श्री रोहिणीव्रत कथा
और
श्री रोहिणीव्रतोद्यापनम्

रचयिता:—
पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य 'बसन्त'।

स्व० सेठ किसनदास पूनमचन्दजी कापड़िया (सूरत) स्मारक ग्रन्थ-मालाकी ओरसे "दिगम्बर जैन" पत्रके ४४वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

मूल्य—बारह आना।

श्री रोहिणीव्रत कथा
और
रोहिणीव्रतोद्यापनम्

रचयिता—
पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य 'बसंत'—सागर

प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक-सूरत।

प्रथमवार] वीर सं० २४७७ [१०००

स्व० सेठ किसनदासजी कापड़िया (सूरत)
स्मारक ग्रन्थमालाकी ओरसे "दिगम्बर जैन"
पत्रके ४४ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

मूल्य—बारह आने।

स्व० सेठ किसनदास पूनमचंद कापडिया

स्मारक ग्रन्थमाला—सूरत नं० ७

हमने अपने पूज्य पिताजीके स्मरणार्थ वीर सं० २४६०में २०००) आपके नामसे एक स्थायी ग्रन्थ-माला प्रकट करनेको निकाले थे जिससे आजतक ६ ग्रन्थ प्रकट होकर 'दिगम्बर जैन' पत्रके ग्राहकोंको भेंट दिये जा चुके हैं जिनके नाम हैं—

१—पतितोद्धारक जैनधर्म (कामताप्रसाद जैन) १॥)
२—संक्षिप्त जैन इतिहास तृ. भाग, द्वि. खंड १॥)
३—पंचस्तोत्र संग्रह सार्थ (वसंत) ॥=)
४—भगवान कुंदकुंदाचार्य (कामताप्रसाद) ॥)
५—संक्षिप्त जैन इतिहास तृ. भाग चतुर्थ खंड १॥)
६—जैनाचार्य (३३ आचार्योंके चरित्र) १॥=)

और यह सातवां ग्रंथ रोहिणीव्रत कथा व उद्यापन जिसकी रचना श्री पं० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य वसंत (सागर)ने की है, वह प्रकट किया जाता है और दिगम्बर जैनके ४४वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटमें दिया जाता है।

यदि ऐसी ही अनेक स्मारक ग्रंथमालायें दि० जैन समाजमें स्थापित होकर उनके द्वारा विनामूल्य या अल्प मूल्यमें नवीन ग्रंथ प्रकट होते रहें तो अप्रकट दिगम्बर जैन साहित्यका अधिकाधिक प्रचार हो सकेगा।

सूरत वीर सं० २४७७
ता० १-५-५१

मूलचंद किसनदास कापडिया
प्रकाशक।

शुद्धिपत्रम्-रोहिणी व्रतोद्यापनम् ।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	विघातका	विधातव्या
२	३	धींद्वस्थात्रिनः	धींद्वःस्थायिनः
२	२०	शिखरो	शिखरी
३	१०	द्वापु	द्वायु
४	११	तच्च	तत्व
६	२	कान्ते	कान्तम्
६	८	रूढ	रूढं
६	१५	श्रीमत्	श्रीमन्
९	८	कल्पत्मकेन	फलात्मकेन
,,	१७	पूर्णाघिण	पूर्णार्घेण
१०	५	दीप	दीय
,,	११	पक्षे	सपक्षे
,,	१५	नखद्ना	नखरद्ना
,,	१७	दीवापति	दिवापति
११	१	पतभवनं	पतिभवनं
,,	२	मनलं	ममलं
,,	१५	संपाताः	संयाताः
,,	१६	विविघ	विविध
१२	१५	ये	मे
१४	१	पिहत	विहत
,,	,,	पीडतं	पीडनं
,,	,,	पीडन	मीडन
१४	२२	सयत्न	सपत्न
१५	१०	दैवैर्शः	दैवैर्यः

नं०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१४	राहते	राहतें
,,	१२	नहि	बहि
१८	१	निकृत	निकृत्त
,,	७	तत्कीर्ति	सत्कीर्ति
,,	२२	मुदाह	मुदाहं
१९	६	जिनं यजं	जिनं तं यजं
,,	१२-१८	भजे	यजे
२०	७	प्रदीपै	प्रदीप्तै
२१	१४	समवाय	समवाप
२२	१२	नश्यती	नश्यतो
२४	३	वृयो	दृथो
,,	८	धन्याभाम्यो	धन्यभाग्यो
२५	२	लोलित	लोकित
,,	७	पादो	यादो
२७	१	केलाद्यै	केलाद्यैः
२८	४	सन्निधौ	सत्तिथो
२९	१९	विष्व	विष्वग्
३०	४	चन्द्रे	चक्रे
,,	१०	रम्यै	रम्यैः
३२	१८	रेक	रेफ
३४	९	पञ्चन्द्रिक	चञ्चचन्द्रिक
३६	१८	मामिनीं	मानिनीं
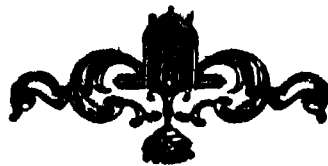
श्रीरोहिणीव्रत कथा।

श्रीहरिषेणाचार्यकृत संस्कृत कथाका हिंदी अनुवाद

वृषभादि सुवीरान्तान् जिनानानम्य भक्तितः ।
रोहिणीव्रतकाख्यानं वक्ष्ये मत्या यथागमम् ॥

मगधदेशमें राजगृह नामका विशाल नगर है। इसमें सम्यग्दर्शनसे शोभायमान राजा श्रेणिक राज्य करते थे। इनकी अतिशय प्रसिद्ध चेलना नामकी महादेवी थी। इनके वारिषेण नामका पुत्र था जो श्रावक था और विद्वानोंमें अतिशय प्रसिद्ध था। एकदिन राजा श्रेणिक विपुलाचल पर्वतपर स्थित बारह सभाओंसे युक्त श्री वर्धमानस्वामीके समीप पहुँचे और देव, असुर तथा मनुष्योंके द्वारा स्तुत और समस्त कर्मोंका क्षय करनेवाले श्री वर्धमानस्वामीको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनसे यह पूछने लगे कि हे स्वामिन्! आपके समान तीर्थंकर कितने हैं, तथा चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण कितने हैं! ऐसा ही अन्यत्र कहा है कि हे नाथ! आपके समान जिनेन्द्र कितने हैं? चक्रवर्ती कितने हैं? बलभद्र और नारायण कितने हैं? तथा इनके शत्रुभूत प्रतिनारायण कितने हैं? हे स्वामिन्! यह सब मुझसे कहिये। हे जिनेन्द्र! हे पवित्र! हे त्रिभुवनगुरो! मैं इस समय आपके प्रसादसे सब जानना चाहता हूं।

मगधेश-राजा श्रेणिकके वचन सुनकर श्री वर्धमान जिनेन्द्र कौतुक युक्त चित्तवाले राजाके समक्ष उनके प्रश्नानुसार कहने लगे-हे राजन्! समस्त पृथिवीके अधिपति तीर्थंकर चौबीस कहे गये हैं तथा चक्रवर्ती उनसे आधे अर्थात् बारह, बलभद्र नौ नारायण नौ, और दुष्ट कार्योंसे युक्त प्रतिनारायण भी नौ कहे गये हैं। इस प्रकार श्री ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके पुराणोंका कथन करते हुए श्री वर्धमान जिनेन्द्र अङ्गदेशमें पधारे। वहां उन्होंने कहा—

इस अङ्गदेशमें चम्पापुरी नामकी मनोहर नगरी है, जो हमेशा मनुष्योंसे व्याप्त रहती है। पहले किसी समय इसके राजाका नाम वसुपूज्य था और नारीका जया। इन दोनोंके भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाला, रूपवान और बत्तीस लक्षणोंसे सहित वासुपूज्य नामका पुत्र हुआ था। बारहवें तीर्थके स्वामी उन श्री वासुपूज्यस्वामीका गुणरूपी रत्नोंके समूहसे भरा हुआ यह पुराण सुनकर राजाने अमृतत्रय नामके प्रथम गणधरसे यह पुराण पूछा। कौतुकसे व्याप्त है चित्त जिसका ऐसे राजा श्रेणिकके ... वचन सुनकर श्री वर्धमानस्वामी, सामने बैठे हुए श्रेणिकसे इस प्रकार कहने लगे—

जम्बूद्वीपमें स्थित इसी भरत क्षेत्रमें धन और धान्यसे सहित एक कुरुजाङ्गल नामका देश है, उसमें नागरिक लोगोंसे भरा हुआ अतिशय श्रेष्ठ हस्तिनागपुर नामका नगर है। वीतशोक वहाँका राजा था जो मनुष्योंको अत्यन्त प्यारा था। इस राजाके विद्युत्प्रभा नामकी प्रिय महारानी थी और अशोक नामका पुत्र था जिसका शरीर सदा शोकसे शून्य रहता था।

शोभा सम्पन्न अङ्ग नामक महादेशमें एक चम्पा नामकी श्रेष्ठ नगरी थी। वहाँ मघवा नामका राजा राज्य करता था और उसकी श्रीमती नामकी रानी थी। उसके आठ पुत्र थे जो गुणोंकी

स्थान थे, समस्त पृथिवीतलमें प्रसिद्ध थे, तथा निम्नलिखित नामोंको धारण करते थे। लक्ष्मीका प्रिय १ श्रीपाल, गुणप्रिय २ गुणपाल, विस्तृत धनका धारक ३ वसुपाल, प्रजाका स्वामी ४ प्रजापाल, व्रतोंको धारण करनेवाला ५ व्रतपाल, लक्ष्मीका धारक ६ श्रीधर, गुणोंसे पृथिवीतलको अनुरक्त करनेवाला ७ गुणधर और यशका धारक तथा यशसे आकाशको सफेद करनेवाला ८ यशोधर। यथार्थ नामको धारण करनेवाले ये सभी पृथिवीतलमें अतिशय शोभायमान होते थे।

इसी मघवा राजाकी रूप यौवन सम्पन्न, स्थूल उठे हुए तथा सघन स्तनोंसे युक्त एवं कलाकी आधार रोहिणी नामकी प्रसिद्ध कन्या थी। एकबार रोहिणी कार्तिक मासकी अष्टाह्निकामें उपवास धारण कर चन्दन नैवेद्य पुष्प धूप तन्दुल आदि पूजाकी सामग्री लेकर चम्पानगरीकी पूर्व दिशामें स्थित महापूजाङ्क नामक अतिशय ऊंचे जिनालयमें पहुँची। वहां भक्तिपूर्वक पुष्प गन्ध अक्षत आदिसे जिन भगवानकी बड़ी भारी पूजा कर उसने श्री जिनेन्द्र-देव और साधुओंको नमस्कार किया, फिर शेषाक्षत लेकर जिन मन्दिरसे बाहर आई, और सभाके मध्यमें स्थित माता पिताके लिये तथा अन्तःपुरके अन्यजनोंके लिये भी उसने वह शेषाक्षत दिये।

पिताने कन्याको देखकर अपनी गोदमें बैठाया और उसे यौवन रूप हस्तीको प्राप्त अर्थात् नूतन तारुण्यवती एवं प्रौढ़ देख कर कुछ विषाद युक्त हो इस प्रकार चिन्ता की कि अत्यन्त रूपसे सम्पन्न एवं नवयौवन वाली यह कन्या गुण और रूपसे समानता रखनेवाले किस युवाको दूंगा।

ऐसा विचार कर राजा जब कुछ निश्चय न कर सके तब राजाने कन्याको तो घरके प्रति विदा किया और आप स्वयं शीघ्र ही विशाल मन्त्रशालामें प्रविष्ट हुए। वहां उसने बुद्धिमान् सुमति १, श्रेष्ठ तथा शास्त्र ज्ञान सहित श्रुतसागर २, बुद्धिके स्वामी

विमलमति ३, और विमल अभिप्रायके धारक विमल ४, इन मंत्र करनेमें अत्यन्त निपुण चारों मन्त्रियोंको बुलाया और जब वे यथायोग्य आसनोंपर बैठ चुके तब राजाने उनसे यह पूछा—

हे मंत्र करनेमें चतुर मंत्रियो! आप लोग निःशङ्क होकर कहिये कि यह सुकुमाराङ्गी रोहिणी कुमारी किस कुमारके लिये दी जाय?

इस प्रकार राजाके वचन सुनकर अन्य मन्त्रियोंके द्वारा प्रेरित हुआ सुमति मन्त्री सबसे पहले राजाको इष्ट लगनेवाले वचन बोला—हे राजन! यदि यह कन्या किसी एक कुमारके लिये दी जाती है तो सम्भव है कि इसका प्रेम सम्बन्ध उस पुरुषमें हो तथा नहीं भी हो अथवा दैवयोगसे उस सुभोगी पुरुषकी इस कुमारीमें प्रीति न हुई तो मातापिता क्या करेंगे? इसलिये यह कन्या स्वयंवरमें अनेक राजाओंका समागम रहते अपने इष्ट पतिको ग्रहण करे ऐसा मेरा विचार है। स्वयंवरकी पद्धति पूर्व राजाओंने आदरपूर्वक स्वीकृत की है, इसलिये जो बात पहलेसे चली आई है उसके करनेमें पुरुषोंको लज्जा नहीं होती।

सुमति मन्त्रीकी बात सुनकर राजाने शीघ्र ही नाना मणियोंसे सुशोभित सुवर्ण निर्मित अतिशय ऊँचे करोड़ों सिंहासन बनवाये और शीघ्र गमन करनेवाले अपने पुरुषों द्वारा इस समस्त पृथिवी-तल पर उसी समय स्वयंवरकी घोषणा करा दी। वैभवशाली राजा दूतों द्वारा स्वयंवरका समाचार सुनकर शोभायुक्त चम्पापुरमें आये और मञ्चोंपर आरूढ़ होगये। उस समय स्वयंवर मण्डपमें समान तालसे बजनेवाले एवं पृथिवी और आकाशको शीघ्र ही शब्दायमान करनेवाले तुरही बाजे मधुर और गम्भीर स्वरमें बज रहे थे।
प्रसन्न है चित्त जिसका ऐसा कोई राजा अपनी हार रूपी लताको हाथसे छू रहा था, कोई मुकुटको हाथसे स्थिर तथा उन्नत कर रहा था, कोई आंखसे कन्याके आगमनको देखता हुआ बड़ी शीघ्रताके साथ

अपने हाथसे स्निग्ध बालोंके समूहको शिरपर निश्चल कर रहा था, कोई मूंगाके समान कान्तिवाले ओठको हाथसे कुछ खींचकर एक आँखसे देख रहा था और दूसरी आँखसे दिशाके मुखकी ओर देख रहा था, कोई, जिसने अपनी सुगन्धसे भ्रमरोंको आसक्त कर रक्खा है, जिसने समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर दिया है और जिसका अग्र भाग खिल रहा है ऐसा क्रीड़ा कमल अपने हाथमें कर रहा था, कोई वीणा लेकर सात स्वरोंसे युक्त तथा उन्नीस मूर्च्छनाओंसे सहित सुन्दर गीत गा रहा था, कोई कुछ तिरछी तथा सुन्दर पट्टीसे सान्द्र एवं चमकती हुई छुरीको नितम्ब स्थल पर बांध रहा था, और कोई प्रसन्नचित्त राजा हाथसे पान लेकर अपने शब्दसे पृथिवी और आकाशको भरता हुआ सहसा हँस रहा था। इस प्रकार उस समय जिनके चित्त कामसे व्याकुल हो रहे हैं और जो कन्याके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ऐसे सभी राजा विविध प्रकारकी क्रियाएं कर रहे थे।

इधर राजाओंकी ऐसी चेष्टाएं हो रही थीं, उधर महामूल्य वस्त्रोंको धारण करनेवाली, सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, सौन्दर्यसे जिसका प्रत्येक अङ्ग सुशोभित हो रहा है, मदोन्मत्त हाथीके समान जिसकी चाल है, पाँच वर्णके फूलोंसे बनी माला जिसके हाथमें है और जो धायके आगे चल रही है ऐसी रोहिणी कन्याने स्वयं-वर मण्डपमें प्रवेश किया।

जिसके चित्त कामसे व्याकुल हो रहे हैं ऐसे सभी राजा इस कन्याको स्वयंवर मण्डपमें आई हुई देखकर निम्न प्रकार वारवार चिन्तवन करने लगे कि यह क्या यक्षी है कि किन्नरी है कि विद्याधरकी पुत्री है, कि उर्वशी है, कि इन्द्राणी है, कि रति है, कि तिलोत्तमा है? इस तरह बहुत प्रकारके वितर्क करते हुए राजा विस्मित चित्त होकर बैठे हुए थे। उस समय उन सभीके नेत्र रोहिणीके मुख कमल पर लगे रहे थे।

अथानन्तर कोकिलके समान मधुर स्वरवाली तथा सोनेकी छड़ी हाथमें धारण करनेवाली सुमङ्गला नामकी मानवती धात्री कन्यासे बोली-हे कुमारी! महाकुन्दपुरके स्वामी, कुन्दके फूलके समान दांतोंवाले कुन्द नामके इस सुन्दर राजकुमारको वर! यह मेघपुरका स्वामी है, सुवर्णके समान इसका शरीर है, हेम इसका नाम है, बहुत भारी सुवर्ण तथा धनका आधार है। हे मनस्विनि! तू इसे सन्मानित कर। जिसका समस्त शरीर रत्नोंसे प्रकाशमान हो रहा है ऐसा यह रत्नसंचय नामका रत्नपुरका स्वामी है। हे बाले! तू अपना मन इसमें कर।

यह तिलक नामक नगरका स्वामी है, तिलक इसका नाम है, राजाओंके मध्यमें तिलकके समान है। हे प्रिये! तू इसमें प्रीति कर। यह विद्युत्पुरका स्वामी है विद्युत्प्रभ इसका नाम है। हे मानिनि! तू इस भोगीके साथ भोगोंको सन्मानित कर। इस प्रकार सुमङ्गला धात्रीके द्वारा जिनकी सम्पदाएँ दिखलाई गई हैं ऐसे बहुतसे राजाओंको उल्लंघन कर उन सबपर द्वेष धारण करती हुई रोहिणी शीघ्र ही आगे बढ़ गई।

उसके हृदयका अभिप्राय जाननेमें निपुण पतिव्रता धात्री समस्त राजाओंको छोड़कर आगे बढ़ी हुई रोहिणीसे प्रसन्न वचनों द्वारा इस प्रकार फिर बोली-हे स्वामिनि! यह गुणोंका आधार बीतशोक राजाका पुत्र है, अतिशय श्रेष्ठ है, रूपसे कामदेवको जीत रहा है, शोकसे रहित है और अशोक इसका नाम है, हे पुत्रि! देवके समान रूपको धारण करनेवाले अथवा विद्याधर तुल्य इस विलासीके साथ तू चिरकाल तक सुखका उपभोग कर। धात्रीके वचन सुनकर रोहिणीने उसके सामने स्थित, हृदयको प्रिय लगनेवाले तथा कामदेवके समान सुन्दर उस अशोककुमारको देखा। उस सुन्दर अशोकको देख कर कन्या क्षण मात्रमें मोहको प्राप्त हो गई, और फिर चेतना प्राप्त कर विस्मित चित्त होती हुई

विचार करने लगी कि यह मेरे आगे क्या शरीर सहित कामदेव सुशोभित हो रहा है ? कि, इन्द्र कि विद्याधरोंका राजा, कि भोग भूमिमें उत्पन्न हुआ कुमार। अपने चित्तको हरण करनेवाले उस युवाको मनरूपी मालासे अच्छी तरह बांध कर रोहिणीने पीछे उस अशोकके गलेमें माला छोड़ी।

उस समय वीतशोकके पुत्र अशोकको कन्याकी मालासे विभूषित देखकर अन्य सब राजा अपनेर घर चले गये। जिनके ज्ञानावरणादि कर्म क्षीण होचुके हैं, जिनके केवलज्ञान ही नेत्र हैं और जो समस्त पदार्थोंको जानते हैं ऐसे श्री जिनेन्द्र देवकी अतिशय पवित्र महापूजा कर शुभ दिन तथा शुभ योगादिके समय मघवा राजाके द्वारा प्रदत्त रोहिणीको अशोकने बड़े अनुरागसे विधिपूर्वक विवाहा।

रोहिणीके साथ चन्द्रमाके समान मनोऽभिलषित भोगोंको भोगता हुआ अशोक राजा वहीं सुखसे रहने लगा। पिता वीतशोकने यद्यपि बहुतसे पत्र भेजे, तथापि रोहिणीके स्नेहसे अशोक पिताके पास नहीं जाता था। एकवार अशोकके पिताने अत्यन्त उत्सुक होकर किसी स्तुतिपाठक (चारण) के हाथ परिचायक चिह्नोंके साथ शीघ्र ही पत्र भेजा। उस स्तुति पाठकने चम्पापुरी जाकर वीतशोक महाराजकी स्तुति कर उनका पत्र अशोककुमारके आगे रख दिया। अपने हाथसे पत्र लेकर और उसका अर्थ बांचकर पिताके दर्शनके लिये उत्कण्ठित अशोक शोकसे युक्त हो गया।

तदनन्तर अशोक श्वसुरसे पूछकर रोहिणीको साथ ले अपनी सेना सहित क्रमसे पिताके समीप चला। वहां पहुंच कर अशोकने सभामें स्थित पिताको तथा माताको नमस्कार किया और इस प्रकार पिताके समागमसे अशोक पुनः शोकसे रहित हो गया।

अथानन्तर एक दिन वीतशोक महाराजने ज्वालाओंसे आकाशको प्रकाशित करनेवाली उल्का देखी। उल्कापात देखकर जिनके

हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ है ऐसे महाराज वीतशोक शिरपर अञ्जलि बाँधे हुए सभासदोंसे इस प्रकार कहने लगे—

हे सभासद हो ! प्राणियोंका जीवन विजलीके समान चञ्चल है, मधुर भोजनसे पालित शरीर देखते २ नष्ट हो जाता है, ये मकान आदिके समूह सूखे पत्तोंके समान आभावाले हैं, प्रिय स्त्रीजनोंके साथ प्रीति संध्याकालकी लालीके समान है, बन्धुओंके साथ जो प्रेम है वह स्वप्न राज्यके समान है, इस संसारमें वह वस्तु है ही नहीं जो स्थिरताको प्राप्त हो।

उन सभासदोंसे ऐसा कहकर तथा इष्ट बान्धवजनोंसे पूछकर और अशोकके लिये राज्य लक्ष्मी देकर वीतशोक महाराज घरसे निकल पड़े । उस समय गुणधर नामक मुनि अशोकवनके मध्यमें विराजमान थे, वीतशोक महाराजने बड़ी भक्तिके साथ पास जाकर महाधैर्यशाली उन मुनिराजको नमस्कार किया और बहुतसे श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ उनके पास दीक्षा ग्रहण की। मुनिराज वीतशोक अत्यन्त कठिन तप कर तथा कर्मोंका नाशकर शीघ्र ही निर्वाण धामको प्राप्त हुए ।

पिताकी दीक्षासे उत्पन्न हुए महाशोकको नष्ट कर राजा अशोकने अपने राज्यको विस्तृत किया, तथा समस्त राजाओंको नम्रीभूत किया। राजा अशोकके साथ मनोहर भोग भोगती हुई रोहिणीके क्रमसे आठ निर्मल पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रकार यौवनसे सम्पन्न कमलदलके समान नेत्रोंवाली चार पुत्रियां भी क्रमसे उत्पन्न हुई । पुत्र और पुत्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—विगतशोक १, गतशोक २, जितशोक ३, विनष्टशोक ४, धनपालक ५, वसुपाल ६ और गुणकी खान गुणपाल ७।

इस प्रकार विद्वानोंके द्वारा रोहिणीके सात पुत्रोंके नाम जानने योग्य हैं—वसुन्धरा, सुरकान्ता, लक्ष्मीमती और सुप्रभा ये चार

पुत्रियां थीं। रोहिणीके इन समस्त पुत्र पुत्रियोंके बाद एक लोकपाल-कुमार नामका आठवां पुत्र हुआ जो रूपसे सुशोभित था।

किसी एक समय अशोक राजा, बुद्धिमती रोहिणी, और लोकपाल नामक छोटे पुत्रको गोदमें लिये हुई वसन्ततिलका नामकी धाय ये तीनों महलके अग्रभाग पर मनोहर कोलाहल करते तथा गोष्ठीसुखका उपभोग करते हुए सुखसे बैठे हुए थे। उसी समय मार्गमें कुछ ऐसी स्त्रियां निकलीं जो शोकसे युक्त थीं, जिनके केशोंके समूह खुले हुए थे, जो कोलाहल कर रहीं थीं, मण्डल बनाकर खड़ी हुई थीं, रास कर रही थीं, अपने बालकको वारवार पुकारती थी, वक्षःस्थल, शिर, स्तन और भुजाओंको कूटती हुई रुदन कर रही थीं।

महल पर बैठे बैठे रोहिणीने जब इन स्त्रियोंको देखा तब कौतुक-वश वसन्ततिलका नामकी धात्रीसे इस प्रकार पूछा—हे अम्ब! नृत्य विद्याके जानकार विद्वान सिग्नटक, भानी, छत्र, रास और दुरविनी इन पांच नाटकोंका नृत्य करते हैं परन्तु भरताचार्यके द्वारा कहे हुए इन पांचों नाटकोंको छोड़ कर इन स्त्रियों द्वारा यह कौनसा नाटक किया जा रहा है, जो शिर आदिके कूटनेसे सहित है। निषाद, ऋषभ आदि सात स्वरोंसे रहित तथा भाषा और स्वरोंके चढ़ाव उतारसे रहित यह नाटक मुझसे कहिये। मुझे इस समय इस विषयका कौतूहल हो रहा है।

भोलेपनसे भरे हुए रोहिणीके वचन सुन कर वसन्ततिलका धाय इससे बोली—हे पुत्रि! इन दुःखी जनोंके द्वारा यह शोक तथा महान् दुःख किया जा रहा है। यह सुन रोहिणी कौतुक वश उससे फिर बोली-हे माता! शोक अथवा दुःख क्या कहलाता है? मुझसे कह। अबकी वार धाय क्रुद्ध होकर तथा क्रोधसे लाल लाल आंखें करती हुई बोली—हे सुन्दरि! क्या तुझे उन्माद हो गया है, या तेरा ऐसा पाण्डित्यका वैभव है? या रूपसे उत्पन्न हुआ घमण्ड है या लोकोत्तर सौभाग्य है जिससे तू

इसे स्वर और भाषासे सहित नाटक कहती है ? तू शोक और दुःखको नहीं जानती ? जान पड़ता है कि तू आज ही उत्पन्न हुई है ।

वसन्ततिलकाके वचन सुनकर रोहिणीने उससे फिर कहा-हे भद्रे ! मुझ पर क्रोध मत कर। संगीत, गणित, चित्र, अक्षर, स्वर, चौसठ प्रकारके विज्ञान और बहत्तर प्रकारकी कलाएं इन सबको मैं जानती हूं परन्तु ऐसी कला, रूप, गुण आज तक मुझसे किसीने नहीं कहा। यह गुण पहले मैंने कभी न देखा है न सुना है। इसीलिये आपसे पूछती हूं।

रोहिणीके वचन सुनकर धायने उससे फिर कहा-हे पुत्रि! यह न नाटकका प्रयोग है और न संगीतमयी भाषाका स्वर है। किन्तु इष्टजनकी मृत्युके कारण दुःखसे रोनेवाले जीवोंका शब्द है। हे वत्से! मैं फिर कहती हूं कि यह शोक कहलाता है। धायके वचन सुनकर रोहिणीने उससे फिर कहा-हे भद्रे ! मैं रोनेका अर्थ नहीं जानती अतः बतलाओ कि वह कैसा होता है ?

रोहिणी और धायमें यह वार्तालाप हो रहा था कि बीचमें ही अशोक राजा रोहिणीसे बोले मैं शोकके द्वारा तुझे रोनेका अर्थ अच्छी तरहसे दिखलाता हूं। यह कहकर राजाने धायके हाथसे लेकर बालक लोकपालको रोहिणीके देखते देखते शीघ्र ही महलकी छत परसे नीचे छोड़ दिया। बालक लोकपाल, अशोक वृक्षकी चोटी पर अशोक वृक्षके फूलोंसे बनी हुई शय्या पर पड़ा।

उस बालकको वहां पड़ा जानकर नगरके सभी देवता कोलाहल करते हुए उस स्थान पर आ पहुंचे और कहने लगे कि रोहिणीको ऐसा शोकका कारण क्यों उत्पन्न हुआ? वह प्राप्त हुए शोक और दुःखको देख ही नहीं पाई थी कि उसके पहले ही नगरके देवताओंने अशोक वृक्षके अग्रभाग पर स्थिर पांव

प्रकारके रत्नोंसे उज्ज्वल दिव्य सिंहासन रच दिया। उस सिंहासन पर बैठे हुए बालकका देवताओंने रत्न और सुवर्णके बने, क्षीर-सागरके जलसे भरे और कमल पुष्पोंसे आवृत्त मुखवाले एकसौ आठ कलशोंके द्वारा अभिषेक किया, तथा उसे बालोचित आभूषणोंसे विभूषित किया। इस प्रकार बालक क्रीड़ा करता हुआ उस अशोक वृक्षके शिखर पर विद्यमान था।

जब राजा अशोकने नीचेकी ओर झाँका तो क्या देखते हैं कि रोहिणीका बालक अशोक वृक्षकी चोटी पर सिंहासनमें विराजमान है, अपनी गन्धसे दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले पुष्प तथा धूप आदिसे उसकी पूजा हो रही है, देवता अपने हाथमें स्थित कलशोंसे उसका अभिषेक कर रहे हैं, और दिव्य आभरणोंसे विभूषित किया गया है। यह देखकर सदा प्रसन्न रहनेवाला सहस्राक्ष, महाबुद्धिमान् संकीर्ण मन्त्री, महाराज अशोक, प्रेम करनेवाली रोहिणी तथा पुरोहित आदि सभी लोग पूर्वभवमें रोहिणीके द्वारा किये हुए उपवास और उसके फलसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए।

तदनन्तर आश्चर्यसे भरे हुए वे सब लोग देवोपनीत सब आभरणोंसे सुभूषित उस बालकके पास आनन्दसे स्थित हुए। नागकेशर, चम्पक, अशोक, नमेरु और मौलिश्रीके वृक्षोंसे व्याप्त तथा आम एवं भिलावा आदिके वृक्षोंसे सम्पन्न उस अशोक वनमें अतिभूति, महाभूति, विभूति और अम्बर तिलक नामके चार जिनमन्दिर थे। उसी समय रूप्यकुम्भ और सुवर्णकुम्भ नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज विहार करते हुए हस्तिनापुरनगरमें पधारे, और पूर्वदिशामें समुत्पन्न महावनके महाभूतितिलक नामके जिनमंदिरमें विराजमान हुए। तदनन्तर वे बड़े वेगसे पास आकर राजा अशोकके लिये मुनिराजका सब वृतान्त कहा। वनपालके वचन सुनकर भक्तिसे राजाके शरीरमें रोमांच उठ आये। वे बड़े वैभवके साथ मुनिराजके समीप पहुंचे। पहुंचनेके बाद राजा अशोकने दोनों मुनिराजोंकी बड़ी भक्तिसे

वन्दना की, और फिर अवधिज्ञानी रूप्यकुम्भ नामक मुनिराजसे विधिपूर्वक पूछा-हे प्रभो! बतलाइये कि मैंने और रोहिणीने पूर्वभवमें समस्त जीवोंकी दयामें तत्पर कौनसा पवित्र धर्म धारण किया था? इसके सिवाय हे स्वामिन! विशोक आदि आठ पुत्रों तथा चार कन्याओंके पवित्र पूर्वभवके सम्बन्ध भी मुझसे कहिये।

राजा अशोकके वचन सुनकर मुनिराज रूप्यकुम्भ अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे सब बात ज्ञात कर इस प्रकार कहने लगे- हे राजेन्द्र! मैं संक्षेपसे आपकी स्त्रीके अशोक (दुःखाभाव) का कारण कहता हूं उसे एकाग्र चित्तसे सुनो—

हस्तिनागपुरसे बारह योजन मार्ग चल कर एक नीलगिरी नामका पर्वत है जो अतिशय ऊँचा और अनेक वृक्ष तथा शिलातलोंसे युक्त है। उस पर्वतकी शिखरपर एक यशोधर मुनिराज आतापन योगमें स्थिर रहते थे। वह मुनिराज कर्मरूप शत्रुओंसे लड़नेमें वीर थे, चारण ऋद्धिधारी थे, लोकमें शान्ति उत्पन्न करनेवाले थे, सर्वौषधि ऋद्धिको प्राप्त थे, उनका शरीर धर्मसे भूषित था, वे मासोपवाससे युक्त थे और उनका मन अत्यन्त स्थिर था। किसी एक समय मृगमारी नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर शिकारी मृगोंको मारनेके लिये उस नीलगिरि नामक पर्वत पर गया।

मुनिराजके माहात्म्यसे वह शिकारी मृग मारनेके लिये असमर्थ हो गया, उसके सब बाण व्यर्थ हो गये। यह देख कर उसने विचार किया कि मैं कभी व्यर्थ नहीं जानेवाले अपने इन बाणोंसे सामने स्थित मृगोंको मारनेके लिये समर्थ नहीं हो पा रहा हूं इसमें क्या कारण है? कुछ समय बाद जब उसकी दृष्टि कुछ दूरीपर स्थित मुनिराज पर पड़ी तब उसने शीघ्र ही जान लिया कि इन मुनिके प्रभावसे ही मेरे बाण निष्फल हुए हैं।

वह मुनिराज पारणाके लिये जब तक नगरमें गये तब तक उस शिकारीने आकर मुनिराजके बैठनेकी शिलाको तृण तथा काष्ठसे

जलाकर उसे भस्म तथा अङ्गारोंके समूहसे खूब गरम कर दिया और स्वयं मृगोंको मारनेकी इच्छासे अन्यत्र जाकर स्थित हो गया। मुनिराज पारणा कर मन्द मन्द गतिसे चलते हुए इस शिकारी द्वारा अग्निसे तपाई हुई आतापन शिला पर पहुंचे। यद्यपि पासमें पड़े हुए अङ्गार आदिसे मुनिराजने जान लिया था कि यह शिला गरम की गई है, तथापि निर्मल बुद्धिके धारक मुनिराज सदाके लिये आहार पानीका त्याग कर अर्थात् संन्यास धारण कर उस शिलापर आरूढ़ हो गये और अन्तकृत्केवली होकर समस्त सुर असुरों द्वारा नमस्कृत होते हुए समस्त कर्मोंसे निर्मुक्त हो मुक्ति-लक्ष्मीको प्राप्त हुए।

उदुम्बर नामक कुष्ठसे जिसका समस्त शरीर सड़ गया है ऐसा वह शिकारी सातवें दिन मृत्युको प्राप्त हुआ और मरकर मुनि हत्याके पापसे सातवें नरक गया, वहां उसकी तेतीस सागरकी आयु थी। वह शिकारी बड़े दुःखसे सातवें नरकसे निकल कर दुःख देनेवाली तिर्यञ्चगतिको प्राप्त हुआ फिर मनुष्यगतिमें भ्रमण करता रहा।

इसी मनोहर हस्तिनागपुर नगरमें बहुत भारी गोधनसे विभूषित गोपालदण्डी नामसे प्रसिद्ध एक गोपाल रहता था। उसकी स्त्रीका नाम गान्धारी था। वह शिकारीका जीव इन्हीं दोनोंके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ। किसी दिन वह जवान होने पर मात्र गायोंकी रक्षा करनेके लिये नीलगिरि पर्वत पर गया। उस ऊंचे नीलगिरि पर्वत पर वह दावानलसे जल गया, उसका सारा शरीर भस्म हो गया जिससे वेचारा मृत्युको प्राप्त हुआ। घी खरीदनेके लिये गोकुलमें आये हुए विवेकी सिंहदत्तने उसके माता पिताके लिये पुत्रका सब समाचार स्पष्ट कहा। वृषभसेन पुत्रका मरण सुनकर गान्धारी करुणस्वरसे रुदन करने लगी—हे राजन्! यह मैंने मुनिको दुःख देनेवाला शोकका कारण तुझसे कहा। अब अशोक और रोहणीका सम्बन्ध कहता हूं।

हे राजन्! इसी हस्तिनागपुर नगरमें एक वसुपाल नामके राजा होगये हैं। उनकी भार्याका नाम वसुमती था। वसुमतीका भाई धनमित्र राजसेठ था जो बड़ा धनी था। उसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था, उन दोनोंके पूतिगन्धा नामकी पुत्री थी। मरे हुए कोढ़ी कुत्तेके शरीरसे जैसी दुर्गन्ध आती है ऐसी ही उसके शरीरसे असहनीय तथा समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाली दुर्गन्ध सदा निकलती रहती थी। दुर्गन्धसे भरे हुए उसके समीपवर्ती स्थानमें ब्रह्माके समान मनुष्य भी खड़ा रहनेके लिये समर्थ नहीं होता था, फिर अन्य दुर्बल साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या थी?

उसी नगरमें एक वसुमित्र नामका धनवान सेठ था। उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था। इन दोनोंके एक श्रीषेण नामका पुत्र था। उस श्रीषेणको जुआ खेलना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, परस्त्री सेवन करना, चोरी करना, जीवहिंसा करना और मांस भक्षण करना इन व्यसनोंमें आसक्ति थी। श्रीषेण अविनीत-अशिक्षित था इसलिये मनुष्योंको दुःख देनेवाले इन सातों व्यसनोंसे सदा क्रीड़ा किया करता था। सात व्यसनोंके विषयमें अन्यत्र भी कहा है कि जुआ, मांस, वेश्या, परस्त्री, हिंसा, चोरी, और मदिरा ये, मनुष्योंके सात दोष हैं जो अत्यन्त पापसे पूर्ण हैं और शिष्ट मनुष्य इन्हें दुर्गतिका मार्ग कहते हैं।

एक दिन यह श्रीषेण चोरीके लिये किसी धनवानके घरमें घुसा और अत्यन्त क्रोध युक्त यमदण्ड नामक कोतवालके द्वारा पकड़ा गया। यमदण्डने इस दुष्ट चोरको अच्छी तरह बांध कर नगरसे बाहर भेज दिया। जाते समय उसके आगे नगाड़ेका शब्द होरहा था। बहुत लोगोंसे घिरे एवं दृढ़बन्धनसे बंधे हुए उस श्रीषेणको नगरके बाहर ले जाया जाता देख धनमित्र सेठने कहा-हे श्रीषेण! यदि तू मेरी कन्याके साथ विवाह करना स्वीकृत कर ले तो मैं निःसन्देह तुझे छुड़ा दूं। भयसे कांपते हुए श्रीषेणने

उसके वचन सुन कर कहा—हे मातुल! मैं ऐसा ही करूंगा आप मुझे शीघ्र ही बन्धनसे छुड़ा दें।

सेठ धनमित्रने राजासे कह कर श्रीषेणको शीघ्र ही बन्धनसे छुड़ा दिया और उसके लिये अपनी पूतिगन्धा नामकी पुत्री विधि पूर्वक प्रदान कर दी। जिसकी गन्धसे सब लोग भाग जाते थे उस पूतिगन्धाको इसने विधिपूर्वक विवाहा और मुख तथा नाकको ढक कर जिस किसी तरह एक रात्रिभर उसके साथ रहा, परन्तु दुर्गन्धका दुःख सहन नहीं कर सका इसीलिये सबेरा होते ही नगरसे कहीं अन्यत्र चला गया। श्रीषेणके द्वारा छोड़ी हुई पूतिगन्धा अत्यन्त दुःखी हुई और अपने जीवनकी निन्दा करती हुई पिताके घर रहने लगी।

इस प्रकार पूतिगन्धाका काल बड़े दुःखसे व्यतीत हो रहा था कि किसी समय सुव्रता नामकी आर्यिका भिक्षाके लिये उसके पिताके घर आई। अत्यन्त दुःखी पूतिगन्धा आर्यिकाको देखकर तथा उन्हें भिक्षा देकर परम उपशम भावको प्राप्त हुई।

उसी नगरमें एक कीर्तिधर राजा थे जिनकी रानीका नाम कीर्तिमती थी। राजा कीर्तिधरने समस्त शत्रुओंको जीत लिया था। एकदिन राजा कीर्तिधर सभाके मध्यमें विराजमान थे कि वनपालने आकर खबर दी कि हे राजन्! हमारे वनमें अमितास्रव नामक मुनिराजके साथ भगवान पिहितास्रव पधारे हैं जो चारण ऋद्धिके धारी हैं और शिलातल पर विराजमान हैं। वनपालके वचन सुनकर कीर्तिधर राजा अपने परिवारके साथ उन दोनों मुनियोंको नमस्कार करनेके लिये गये। दोनों मुनियोंको भक्तिपूर्वक वन्दना कर तथा श्रेष्ठ धर्म सुनकर राजा शीघ्र ही सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हो गया।

उस समय पूतिगन्धा भी अपने परिवारके लोगोंके साथ वहां पहुंची थी। उसने दोनों मुनियोंको नमस्कार कर धर्मका व्याख्यान

सुना जिससे उसके भाव अत्यन्त विशुद्ध हुए। अन्तमें पूतिगन्धाने दोनों हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर दयालु मुनि युगलसे अपने पूर्वभव पूछे।

महावैराग्यके कारणभूत पूतिगन्धाके वचन सुनकर योगिराज अमितास्रव सामने खड़ी हुई पूतिगन्धासे कहने लगे-हे पुत्रि! तू स्थिर चित्तसे सुन। हे मुग्धे! मैं संक्षेपसे तेरी दुर्गन्धका कारण कहता हूं।

जम्बूद्वीपके इसी भरतक्षेत्रमें पश्चिम समुद्रके समीप एक सौराष्ट्र नामका उत्तम देश है। उसमें ऊर्जयन्तगिरिकी पश्चिम दिशामें एक गिरिनगर नामका नगर है। उसमें भूपाल नामके सम्यग्दृष्टि राजा थे उनकी रानीका नाम स्वरूपा था। स्वरूपाका शरीर रूपसे शोभायमान था। इस भूपाल राजाका गङ्गदत्त नामक एक राजसेठ था। उसकी भार्याका नाम सिन्धुमती था जो मिथ्यात्व रूपी पिशाचसे दूषित थी। यह सिन्धुमती अपने रूप तथा यौवनके गर्व एवं गुरुतर विलाससे सुन्दर स्त्री जनोंको तृणसे भी तुच्छ समझती थी। किसी एक समय मासोपवासी समाधिगुप्त नामक सम्यग्ज्ञानी मुनिराज पारणाके लिये इस नगरमें आये। उस समय गङ्गदत्त सेठ राजाके साथ प्रमद वनको जारहा था। जब सेठने देखा कि उक्त मुनिराज एक घरसे दूसरे घरको जाते हुए धीरे धीरे हमारे ही घरमें प्रवेश कर रहे हैं। तब उसने अपनी प्रिया सिन्धुमतीसे कहा-हे भद्रे! चर्याके लिये निर्दोष मुनिराज अपने घर प्रविष्ट हुए हैं इसलिये हे सुन्दरी! तुम इन्हें भोजन कराकर पीछेसे आजाना। सिन्धुमती सेठके कहनेसे लौट तो गई परन्तु बहुत रुष्ट हुई। वह पड़गाह कर मुनिराजको अपने घर ले गई। वहां उसने धायके रोकने पर भी क्रोधसे लाल नेत्र कर भैंसकी पीठपर लगानेके लिये नमक आदिसे संस्कृत की हुई कडुवी तूमड़ी खड़े हुए उन मासोपवासी मुनिराजके लिये आहारमें दे दी।

मुनिराज सदाके लिये आहार पानीका त्याग कर तथा आराधनाकी आराधना कर स्वर्गमें देव हुए। जिस समय मृत मुनिको विमानमें अधिष्ठित कर लोग नगरके बाहर लिये जा रहे थे उसी समय राजा प्रमद वनसे लौट रहा था। उसने किसी मनुष्यसे पूछा कि क्या बात है? राजाके वचन सुन कर उस मनुष्यने उत्तर दिया कि यह कडुवी तूमड़ी देनेवाली सिन्धुमतीकी चेष्टा है। राजाने यह सुन कर उस दुराचारिणी सिन्धुमतीका शिर मुंड़वाया, पांच वेल उसके कण्ठमें बांधे, ताड़नके साथ उसे गधेपर बैठाया और अनेक मनुष्योंके समक्ष उसे उसी समय ढोल बजवा कर नगरसे बाहर निकाल दिया। मुनिहत्याके पापसे उसे उदुम्बर कुष्ट हो गया, और वह सातवें दिन मर कर बाईस सागरकी आयुवाले छठवें नरकमें उत्पन्न हुई। तदनन्तर क्रमसे सातों नरकोंमें घूम कर उस पापिनीने बहुत दुख भोगे। अत्यन्त भयंकर दुखोंसे भरी हुई उन नरककी पृथिवियोंसे निकल कर वह तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हुई, वहां भी उसका चित्त दुःखसे पीड़ित रहता था।

उस तिर्यञ्च गतिमें दो वार कुतिया हुई फिर सूकरी, शृगाली, चूही, जलूका, हस्तिनी, गधी और गोणिका हुई। पश्चात् अत्यन्त दुःखसे युक्त दुर्गन्धित शरीर वाली एवं बन्धुजनोंके द्वारा निन्दित पूतिगन्धा हुई है।

मुनिराजके वचन सुनकर जिसका मन संसारसे भयभीत होरहा है ऐसी पूतिगन्धाने सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले मुनिराजसे फिर कहा-हे भगवन! अब मैं किस कार्यसे पूर्वसञ्चित पापको छोड़ सकती हूं? सो कृपा कर मुझे कहिये। आप सब कार्यमें समर्थ हैं। पूतिगन्धाके वचन सुनकर महामुनिराज जिनका चित्त भक्तिसे भर रहा है तथा जो संसारसे भयभीत हैं ऐसी उस पुत्रीसे बोले-

यदि तू सचमुच ही समस्त पापोंसे छुटकारा और रोग

शोकसे रहित देवराज पदवीको प्राप्त करना चाहती है तो रोहिणी नक्षत्रमें शीघ्र ही उपवास कर जिससे तू फिर कभी दुख न देखेगी।

मुनिराजके वचन सुनकर पूतिगन्धाने कहा कि—हे नाथ! रोहिणी नक्षत्रमें उपवास किस प्रकार किया जाता है? यह सुनकर जिसका चित्त भक्तिसे भर रहा है और नेत्र आँसूओंसे युक्त हैं ऐसी पूतिगन्धासे मुनिराज बोले-हे पुत्रि! पूर्व दिन पवित्र मुनि-मार्गके अनुसार चार प्रकारका प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् चार प्रकारके आहारका त्याग करना चाहिये और जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर स्थित हो। उस दिन जिनेन्द्र भक्ति पूर्वक उपवास करना चाहिये। इस प्रकार सत्ताईसवें दिन एक उपवास होता है। अब व्रतके समयका परिणाम बतलाया जाता है जो इस प्रकार है। पांच वर्ष और नौ दिन व्यतीत होनेपर सड़सठ ६७ उपवास हो जाते हैं।

हे भद्रे! भव्य जीवोंका कल्याण करनेवाले इस उपवासकी विधि उक्त विधिसे पूर्ण होती है। उपवास बीचमें खण्डित नहीं होना चाहिये। जब उपवासकी समस्त विधि अखण्डित रूपसे पूर्ण हो जावे तब हे आर्ये! रोहिणी व्रतकी पुस्तक लिखवाना चाहिये, तथा अन्य पुस्तकों एवं शास्त्र सम्मत, श्रेष्ठ और भव्य समूहका हित करनेवाले धर्मके कारणोंसे प्रभावना करना चाहिये। सुर और असुरोंके द्वारा नमस्कृत भव्य जीवोंको आनन्द दायी श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रकी प्रतिमा कराना चाहिये। विमान, पताका, विविध प्रकारके भृङ्गार, कलश, घण्टा, किङ्किणी, दर्पण, स्वस्तिक, चन्दन, केशर, अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको अंधा करनेवाले पुष्प, पञ्चप्रकारका नैवेद्य, तथा दीप धूप फल आदिके द्वारा श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र और श्री रोहिणी व्रतकी पुस्तककी पूजा कर्मक्षयके निमित्त भक्तिपूर्वक करना चाहिये। पश्चात् चार प्रकारके संघके लिये आहार, औषधि तथा वस्त्र आदिका यथायोग्य दान देना चाहिये। इस प्रकार पृथिवी तल पर जो स्त्री

भक्तिपूर्वक इस रोहिणीव्रतको करती है वह क्रमसे केवलज्ञान तथा मोक्षको प्राप्त होती है।

मुनिराजके उक्त मनोहर वचन सुनकर पूतिगन्धाने उपवासकी यह विधि ग्रहण की। तदन्तर भक्तिसे जिसके रोम हर्षित हो रहे हैं ऐसी पूतिगन्धाने हृदयको प्रिय लगनेवाली उपवासकी यह श्रेष्ठ विधि ग्रहण कर योगिराजसे कहा।

हे भगवन्! मेरे ही समान दुर्गन्धसे युक्त किसी अन्य पुरुषने यदि पहले इस उपवास विधिको ग्रहण किया हो तो इस समय मुझसे कहिये। पूतिगन्धाके वचन सुनकर मुनिराज पुनः बोले। जिस समय मुनिराज कह रहे थे उस समय पूतिगन्धा अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुई थी। हे पुत्रि! तेरे समान दुर्गन्धिसे युक्त अन्य पुरुषने समस्त दुःखोंका क्षय करनेवाली यह मनोहर उपवास विधि स्वयं धारण की है।

मुनिराजके दृढ़ताभरे वचन सुनकर पूतिगन्धाने फिर कहा कि हे भगवन्! यह विधि कहां और किसने की है, सो इस समय मुझसे कहिये आप सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। यह सुनकर मुनिराज सामने बैठी हुई, जिन वाक्योंमें चित्तको लगानेवाली तथा जिन भक्तिमें तत्पर पूतिगन्धासे इस प्रकार कहने लगे।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक शकट नामका देश है, उसमें सिंहपुर नामका श्रेष्ठ नगर है। सिंहसेन उस नगरके राजा थे और कनकप्रभा उनकी रानी थी। उन दोनोंके पूतिगन्ध नामका पुत्र था। एक समय विमलमदन नामक जिनराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनके ज्ञानकल्याणकमें देवोंका आगमन हो रहा था। उसी समय पूतिगन्ध महलकी छतपर बैठा हुआ था, उसने आकाशमें जाते हुए देदीप्यमान असुरकुमारको देखा और देखते ही क्षणमात्रमें मूर्छित होगया। चन्दन मिश्रित जलसे सींचनेपर वह क्षणभरमें पुनः चेतनको

प्राप्त हुआ। इस घटनासे पूतिगन्धकुमारको जातिस्मरण हो गया। वह उसी समय अपने पिता सिंहसेन राजाके साथ विमलमदन केवलीके पास गया। वहां दोनोंने तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्तिपूर्वक केवली जिनेन्द्रकी वन्दना की, धर्मश्रवण किया और उनके समक्ष दोनों ही विनीत भावसे बैठ गये।

तदनन्तर सिंहसेनने अवसर पाकर बड़ी ही भक्ति और आदरके साथ उन जिनराजसे अपने मनकी बात पूछी। हे स्वामिन्! मेरा पुत्र दुर्गन्धसे युक्त किस कारण हुआ है? किस कारण मूर्च्छाको प्राप्त हुआ है और किस कारण मूर्छाको छोड़कर यहां आया है? यह सब इस समय मुझसे कहिये।

राजाके वचन सुनकर जिनराज बड़े सन्तोषसे कहने लगे। हे नरेन्द्र! तुम्हारे इस पुत्रने पूर्वभवमें मुनिहत्या की थी जिससे यह नाना योनिरूपी जलसे भरे हुए संसाररूपी सागरमें भ्रमण करता रहा। अब तुम्हारा पुत्र हुआ है और मुनिहत्याके पापसे दुर्गन्धयुक्त हुआ है। ऊपर असुरकुमारको जाता देख इसे नरकका स्मरण हो आया जिससे भयभीत हो गया है और भयभीत होनेसे ही मूर्च्छित हो गया था। इस घटनासे इसे जाति-स्मरण हुआ हो।

तदनन्तर भक्तिमें चित्त लगाते हुए राजाने जिनराजसे कहा कि-हे भगवन्! इसने किस प्रकार और किस लिये मुनिराजका वध किया था सो मुझसे कहिये। राजाके वचन सुनकर केवली पुत्रके वैरसे सम्बन्ध रखनेवाले मुनि हिंसाका कारण कहने लगे।

कलिङ्गदेशके समीप विन्ध्यपर्वत है, उसपर अनेक वृक्षोंसे व्याप्त अतिशय सुन्दर बड़ा भारी अशोक वन है। उसमें अत्यन्त ऊंचे स्तम्बकरी और श्वेतकरी नामके दो हाथी थे जो यूथके स्वामी थे तथा मदसे सुशोभित थे। एक दिन दोनों ही हाथी किसी महानदीके तटमें प्रविष्ट हुए और जलके कारण परस्पर युद्ध कर

दोनों ही मर गये। मरकर बिलाव और चूहा हुए फिर सांप और नेवला हुए फिर बीलोत्पत्रके समान आभा तथा गुमचीके समान लाल नेत्रोंवाले बाज पक्षी और नाग विशेष हुए, फिर काव्यका मनोहर शब्द करनेवाले कबूतर हुए। फिर, कनकपुर नामक रमणीय नगरमें सोमप्रभ राजा थे उसकी सोमश्री नामकी चन्द्रमुखी तथा प्रिय वचन बोलनेवाली स्त्री थी। इसी राजाका एक सोमभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित था, सोमिला नामसे प्रसिद्ध उसकी सुन्दरी स्त्री थी। इसी सोमिलाके वे दोनों सोमशर्मा और सोमदत्त नामके पुत्र हुए। दोनों ही विज्ञान कलासे युक्त तथा वेद और स्मृति शास्त्रके विद्वान् थे। सुंदर शरीरवाली सुकान्ता सोमशर्माकी स्त्री थी, और प्रसिद्ध लक्ष्मीमती सोमदत्तकी पत्नी थी। कुछ समय बाद जब सोमभूति पुरोहितका देहान्त होगया तब राजाने पुरोहितका पद सोमदत्तके लिये दिया। सोमशर्मा नामका जेठा भाई छोटे भाईकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ प्रीति रखता था। सोमशर्माकी स्त्री सुकान्ता कुछ मूढ़ प्रकृतिकी थी। वह सोमदत्तसे प्रतिदिन यह बात कहा करती थी कि हे सोमदत्त! तुम्हारी दुराचारिणी लक्ष्मीमती प्रिया सचमुच हमारे पतिके साथ रहती है। सुकान्ताके द्वारा निवेदित इस बातको सुनकर सोमदत्त बहुत दुखी हुआ। वह उन दोनोंके विधर्मीपनको देखकर घरसे बाहर निकल गया और सोमशर्माकी कुचेष्टासे महावैराग्यको पाकर धर्मसेन मुनिराजके समीप आनन्दसे दीक्षित होगया। जब राजाको इस बातका पता चला कि सोमदत्त तपश्चरणमें स्थित हो गया है अर्थात् तप करने लगा है तब उसने सोमशर्माको पुरोहितके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

एक बार सोमप्रभ राजाने शकट नामक महादेशके राजा वसुपालके पास दूत भेजा। दूतने समीप जाकर राजाको प्रणाम किया और फिर योग्य आसन पर बैठकर हर्षित चित होते हुए इस प्रकार निवेदन किया। निवेदन करते समय उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर

मस्तकसे लगा रखे थे। वह बोला, हे राजन! तुम्हारे पास अतिशय ऊँचा, बलवान् तथा युद्धरसका प्रेमी त्रिलोकसुन्दर नामका हाथी है। हमारे स्वामीने प्रसन्नचित्त होकर आपसे कहा है कि आप इस शूरवीर हाथीको शीघ्र ही हमारे पास भेजदें। इनके वचन सुनकर राजा वसुपालने कहा कि हम यह हाथी नहीं देते, अधिक कहनेसे क्या?

यह सुनकर दूतने शीघ्र ही वापिस आकर सब समाचार अपने स्वामीसे कहे। समाचार कहकर दूत तो सुखसे रहने लगा, परन्तु राजा क्रोधके कारण शत्रुराजा पर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत हुए और अपनी समस्त सेनाके साथ कनकपुर नगरसे बाहर आकर ठहरे। वहां स्कन्धावादके एक ओर सोमदत्त नामक महामुनि रात्रि होजानेके कारण प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान थे। जब सोमशर्माने प्रतिमायोगसे विराजमान सोमदत्त मुनिराजको देखा तब उसने क्रोधसे लाल लाल नेत्र करते हुए राजासे कहा कि हे राजन! बलवान् शत्रुको जीतनेके लिये जानेवाले हम लोगोंको आज इस नग्न साधुके देखनेसे अशकुन हो गया है, इसलिये इसे मारकर इसका रुधिर दिशाओंमें फेंको जिससे हम लोगोंका पवित्र शान्ति कर्म हो सके। मुनिहिंसामें कारणभूत सोमशर्माके ऐसे वचन सुनकर राजा हाथोंसे कान ढककर चुपचाप खड़े रह गये जब राजा इसप्रकार खड़े रह गये तब विश्वदेव नामक ब्राह्मणने कहा—विश्वदेव निमित्तज्ञानी था, शुद्ध आत्माका धारक था, चार वेद और छह अङ्गोंका पारगामी था, नाना शकुनशास्त्रोंके कार्य करनेमें कुशल था, सज्जनोंका इष्ट था और सब लोगोंको प्यारा था। उसने कहा कि हे राजन्! यह सोमशर्मा अज्ञानवश ऐसा कह रहा है। यह मुनि तो समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले हैं; अतः कार्यकी सिद्धि करते हैं। इनके दर्शनसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है यह सब शुभ शकुनोंके समान हैं, तथा सब प्रकारके कल्याण

करनेवाले हैं। ऐसा ही कहा है कि मुनिराज घोड़ा, हाथी, गोमय, उत्तम कलश, और श्रेष्ठ बैल ये आते जाते समय समस्त कार्योंमें सिद्धि करनेवाले हैं। जब अर्जुन युद्धके लिये जा रहे थे तब विष्णु अर्थात् श्रीकृष्णने मार्गमें सामने विद्यमान मुनिराजको देखकर अर्जुनसे कहा था कि हे अर्जुन! तुम निःशंक होकर रथ पर बैठो और धनुष धारण करो। मैं पृथ्वीको जीती हुई समझता हूं; क्योंकि आगे परिग्रह रहित मुनि दिखाई दे रहे हैं। ऐसा ही महाभारतमें कहा गया है कि—

"आरूरोह रथं पार्थ गाण्डीवं चापि धारय।
निर्जितां मेदिनीं मन्ये निर्ग्रन्थो यतिरग्रतः॥

इसके सिवाय समस्त शकुन शास्त्रोंके विद्वानों द्वारा कहा हुआ यह सुभाषित सर्वजन प्रसिद्ध है।

श्रमणस्तुरंगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकराः स्मृताः॥

अर्थात् मुनि घोड़ा राजा मयूर हाथी और वृषभ ये सभी प्रस्थान अथवा प्रवेश करते समय सिद्धिके करनेवाले माने गये हैं।

इसी प्रकार समस्त संसारमें व्याप्त यशके समूहसे उज्ज्वल विद्वानोंने ज्योतिष शास्त्रमें भी यह सुभाषित कहा है कि—

"पद्मिन्यो राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
यद्देशमभिगच्छन्ति तद्देशे शुभ मादिशेत्॥"

अर्थात्-पद्मिनी स्त्रियाँ राजहंस पक्षी, और परिग्रह रहित दिगम्बर साधु जिस देशमें जाते हैं उस देशमें शुभ होता है।

हे राजन्! इसी प्रकार मनुष्योंको पुण्य उत्पन्न करनेवाले समस्त धर्मशास्त्रोंमें भी विद्वानोंने यह सुभाषित कहा है कि—

'योगी च ज्ञानी च तपोधनाश्च,
शूरोऽथ राजा च सहस्रदश्च।
ध्यानी च मौनी च तथा शतायुः-
संदर्शनादेव पुनन्ति पापम्॥"

अर्थात्-योगी ज्ञानी तपस्वी शूरवीर राजा हजारोंका दान करनेवाला ध्यानी मौनी और शतायु पुरुष ये देखने मात्रसे पापी जीवको पवित्र कर देते है।

इसलिये हे राजन्! शत्रुको जीतनेके लिये प्रस्थान करने वाले हम सबको मार्गमें इन महामुनिका मिलना शकुनरूप होगा। यह समस्त संसारको पवित्र करते हैं इन्होंने क्रोध आदि अतरङ्ग शत्रुओंको नष्ट कर दिया है इसलिये इन मुनि महाराजके दर्शनसे हम लोगोंका कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा। इन साधुके दर्शनका फल है कि मगधेश्वर प्रातःकाल ही त्रिलोकसुन्दर नामका हाथी सामने लाकर उपस्थित करेगा।

विश्वदेव पुरोहितके यह वचन सुनकर राजा उस समय प्रसन्नचित होता हुआ चुप होरहा। अथानन्तर दूसरा दिन होते ही मगधेश्वर त्रिलोकसुन्दर नामका हाथी तथा अन्य बहुतसी भेंट लेकर राजाके पास आया। राजा सोमप्रभने भी उनका भक्तिसे सन्मान किया, और फिर हाथी लेकर सेनाके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया। उधर राजा अन्य कार्यमें लीन थे कि इधर सोमशर्माने पूर्वके संस्कारसे प्रतिमायोगसे विराजमान उन मुनि महाराजको शीघ्र ही तलवारसे घात कर दिया, और राजाके साथ ही नगरमें प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर प्रातःकाल होने पर राजा सोमप्रभको जब इस बातका पता चला कि सोमशर्माने उन सोमदत्त नामक मुनिराजको मार डाला है तब बहुत ही कुपित हुए। मुनिहिंसा करनेवाले दुराचारी पापी सोमशर्माको राजाने

पञ्चदण्डसे दण्डित किया अर्थात् उसे अपमानित कर नगरसे बाहर निकाल दिया। मुनिहिंसाके प्रभावसे अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवाले उस सोमशर्माको सात ही दिनमें कुष्ट रोग हो गया। कुष्ट रोगसे उसका समस्त अङ्ग गल गया, और बड़े दुःखसे मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ। बड़े कष्ट भोगकर वहांसे निकला और स्वंभूरमण समुद्रमें एक हजार योजन लम्बा तिमिङ्गल जातिका मच्छ हुआ। फिर मरकर छठवें नरकमें बाईस सागरकी आयुका धारक नारकी हुआ। वहांका समय पूरा कर बड़े कष्टसे निकला, और बड़े बड़े हाथियोंको भयभीत करनेवाला दुष्ट सिंह हुआ। वहांसे भी मरकर पांचवें नरकमें उग्र आकारको धारण करनेवाला और बहुत कष्टको भोगनेवाला नारकी हुआ। वहांसे बड़े कष्टसे निकल कर गुमची फलके समान लाल लाल आखोंवाला काले रंगका भयंकर काय सर्प हुआ। फिर मरकर चौथे नरक गया वहांसे निकल कर व्याघ्र हुआ। व्याघ्र पर्यायसे मरकर तीसरे नरक गया। वहांसे बड़े संक्लेशसे निकल कर दुष्ट पक्षी हुआ, फिर मर कर दूसरे नरक गया। वहांसे बड़े कष्टसे निकल कर सफेद रङ्गका बगला हुआ। बगला भी मरकर अनेक दुःखोंसे भरे हुए प्रथम नरकमें एक सागरकी आयुका धारक नारकी हुआ। हे राजन्! वहांसे निकल कर यह तुम्हारे पूतिगन्धकुमार नामका पुत्र हुआ है इसका शरीर सड़ रहा है जिसमें निरन्तर दुर्गन्ध निकलती रहती है।

उस समय पूतिगन्धकुमारने अपने पूर्वभवोंका सम्बन्ध सुन कर भक्तिसे नत मस्तक हो मुनिराजसे पूछा कि हे महा भाग्य! अन्य जन्ममें किये हुए इस तीव्र पापकर्मका क्षय किस प्रकार हो ऽकेगा। इसके वचन सुनकर मुनिराजने कहा कि यदि तू सचमुचमें दुःखी है तो रोहिणीमें उपवास कर। मुनिराजके वचन सुन कर पूतिगन्धकुमारने उनसे कहा कि रोहिणीमें उपवास किसप्रकार

किया जाता है। यह सुनकर सामने बैठे हुए पूतिगन्धसे मुनिराजने कहा कि हे वत्स ! जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रपर हो उस दिन यह उपवास किया जाता है। ऐसा करनेसे तीन वर्षमें चालीस उपवास हो जाते हैं और पांचवर्ष तथा नौ दिनमें सड़सठ उपवास होजाते हैं। ये उपवास समस्त पापोंको नष्ट करनेवाले होते हैं इस प्रकार उपवासकी विधि समाप्त होनेपर चौवीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंका श्रेष्ठ पट बनवाना चाहिये और उसके नीचे शोक दूर करनेके लिये अशोक तथा अष्ट पुत्र और चार पुत्रियोंसे सहित रोहिणीका चित्र बनवाना चाहिये। वासुपूज्य जिनेन्द्रकी उत्तम प्रतिमा बनवाकर उसकी बड़े उत्सवसे पूजा करना चाहिये। चार प्रकारके संघको आहारदान, औषधिदान तथा वस्त्र आदि भक्तिपूर्वक योग्य विधिसे देना चाहिये। विधिपूर्वक किये हुए इस व्रतके माहात्म्यसे चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, देव धरणेन्द्र मनुष्य तथा विद्याधरोंमें जन्म पाता है सदा दूसरोंसे पूजनीय और वन्दनीय रहता है तथा अन्तमें समस्त दुःखोंका क्षयकर निश्चयसे मोक्षको प्राप्त होता है।

मुनिराजके उपदेशसे पूतिगन्धने जैन धर्ममें दृढ़ विश्वास रूप सम्यग्दर्शन रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास, पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण किये। इन सम्यग्दर्शन आदिकी सामर्थ्यसे पूतिगन्धवाहन सुगन्धिवाहन हो गया, सो ठीक ही है धर्मसे क्या नहीं होता ? इस प्रकार जैनधर्मका पालन कर जब पूतिगन्धवाहनकी एक माहकी आयु अवशिष्ट रह गई तब उसने अपना राज्य श्री विजय नामक पुत्रके लिये दे दिया, और स्वयं चार प्रकारकी श्रेष्ठ आराधनाओंकी आराधना की, अन्तमें श्रावक धर्ममें ही स्थिर चित्त रह कर उसने मरण किया जिससे देव दुन्दुभियोंके शब्दसे भरे हुए प्राणत नाम स्वर्गमें बीस सागरकी आयुवाला महर्द्धिक देव हुआ। वहां उपपाद शय्यापर उत्पन्न हुआ, उसकी बुद्धि

अत्यन्त उत्कृष्ट थी, हार और कुण्डलोंसे उसका शरीर देदेदीप्य मान होरहा था, तथा जन्मसे ही उसे अवधि ज्ञान था। उसने अचिन्त्य दिव्य शरीर देख कर शय्या तलसे मुख ऊपर उठाया और अपने अलंकृत उत्तम शरीर पर फिर दृष्टिपात किया। वह विचारने लगा कि यह क्या है? मैं कहां आगया हूं? मेरा कौनसा जन्म है? मुझे यह उत्तम सुख किस कारणसे प्राप्त हुआ है? यह मेरी ओर मुख उठाये हुए कौन लोग हैं? यह अत्यन्त सुन्दर स्थान कौनसा है? देवोंके योग्य उपचारसे उसने जान लिया कि यह स्वर्ग है। मणिमय आभूषणोंकी किरणोंसे उसे देव जन्मकी स्मृति हो आई। वह देव सेनासे परिवृत होकर अभिषेक गृहमें गया वहां देवोंने उसका विधि पूर्वक अभिषेक किया। अभिषेकके बाद देव उसे अलंकार गृहमें ले गये वहां उसे रत्नमय पटियेपर विराजमान कर मणिमय आभूषणोंसे अलंकृत किया। फिर अभिषेकके समान चञ्चल चमर ढोले। उसी समय दिशाओंमें सहसा जय जय शब्दका उच्चारण होने लगा। एक ओर देवोंके गगनचुम्बी शब्दोंके साथ देव स्तुतियोंका शब्द होने लगा। अनन्तर देदीप्यमान रत्नोंकी किरणोंसे सम दिखनेवाले व्यवसाय गृहमें विराजमान उस देवके पास जाकर दूसरे देव प्रणाम कर निम्न-लिखित उचित प्रार्थना करने लगे कि हे देव! पहले जिनराजका पूजन करो, फिर सैन्य सामग्री देखो, फिर नाटकका अवलोकन करो और उसके बाद देवाङ्गनाओंकी ललित चेष्टाओंका सन्मान करो।

पूतिगन्धवाहनका जीव अपने सामने खड़े हुए तथा आनंदसे स्तुति करनेवाले देवोंको देखकर पुनः विचारने लगा कि मैंने पूर्व-भवमें क्या दान दिया था? किसका ध्यान किया था? और कौन तप तपा था जिससे कि पुण्यका संचय कर मैं इस स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हूं। अवधिज्ञान रूपी लोचनसे अपने समस्त पूर्वभव देखकर वह सर्वदर्शी सर्वज्ञ जिनदेवकी स्तुति करने लगा, और विमानमें

बैठे ही हाथ जोड़ शिरसे लगा कर बोला कि मेरा उस गुरुके लिये नमस्कार हो जिसने कि मुझे यह धर्म ग्रहण कराया था। वही सदा काल वन्दनीय और पूजा करने योग्य है जिसके कि प्रसादसे मैं इस उत्तम देव लोकमें उत्पन्न हुआ हूं। इस प्रकार पूतिगन्धका जीव देव वहां देवियोंके साथ मनोवाञ्छित सुख भोग भोगता हुआ रहने लगा। अब मैं पूतिगन्धके जीवका जो कि इस समय अपरिमित तेजका धारक देव था उत्पत्ति स्थान कहता हूं।

इस जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसमें नव योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी, समस्त धनसे सम्पन्न तथा पृथिवीमें अत्यन्त प्रसिद्ध पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। इसमें अपनी कीर्तिसे समस्त पृथिवीको धवल करनेवाले विमलकीर्ति नामके राजा थे। श्रीमती उनकी रानीका नाम था। पूतिगन्धका जीव इन दोनोंके ही रूप सम्पन्न एवं समस्त लोगोंके मनको हरण करनेवाला अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ, अर्ककीर्तिका एक मेघसेन नामका मित्र था जो इसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। यह दोनों बालक पढ़नेके लिये श्रुतकीर्ति नामक उपाध्यायको सौंपे गये। उनके पास रहकर दोनों शीघ्र ही कलाविज्ञानसे सम्पन्न शास्त्र और शास्त्रमें परिचय करनेवाले तथा शस्त्र रूपी समुद्रके परगामी होगये।

उत्तर मथुरानगरीमें मणियोंसे समुद्रको जीतनेवाला सागरदत्त नामका एक बड़ा धनी सेठ था। उसकी रूपवती कमलनयना जयमती नामकी स्त्री थी। इन दोनोंके एक सुमन्दिर नामका पुत्र था। उसी समय दक्षिण मथुरामें लक्ष्मी सम्पन्न लोकप्रिय नन्दिमित्र नामका सेठ रहता था उसकी धनदत्ता नामकी स्त्री थी। उन दोनोंके सुशीला और सुमति नामकी दो कन्यायें थीं। अतिशय कान्तिकी धारक वे दोनों पुत्रियां मातापिताने उपर्युक्त मन्दिर नामक पुत्रके लिये विधिपूर्वक प्रदान की। उनके विवाहके समय अर्ककीर्ति और

मेघसेन यह दोनों मित्र विहार करते हुए दक्षिण मथुरा पहुँचे। अर्ककीर्ति इन कन्याओंको देखकर विस्मित चित्त हो गया। अर्ककीर्तिकी सम्मतिसे मेघसेनने इन कन्याओंको हाथसे पकड़ लिया और इन्हें लेकर वह ज्योंही जाने लगा त्योंही नगरवासियोंने उसके हाथसे वे दोनों कन्याएं छीन लीं। तदनन्तर उन सेठोंने शीघ्र ही पुण्डरीकिणी नगर जाकर राजा विमलकीर्तिसे यह यह सब बात कही। उनके दीनताभरे वचन सुनकर राजा बहुत ही कुपित हुए जिससे उन्होंने उन दोनोंको शीघ्र ही अपने देशसे निकाल दिया। तदनन्तर शोकसे जिनके मुखकमल कुछ म्लान हो रहे हैं ऐसे मेघसेन और अर्ककीर्ति पताकाओंके समूहसे सुशोभित वीतशोकपुर पहुंचे। वहां नीतिसम्पन्न विमलवाहन नामके राजा थे निर्मल चित्तकी धारक विमलश्री उनकी रानी थी। इन दोनोंके रूपसम्पन्न एवं विनयाचारसे युक्त आठ पुत्रियां थीं जिनके नाम इसप्रकार हैं—१ जयमति, २ सुकान्ता, ३ कनकमाला, ४ सुप्रभा, ५ सुमति, ६ सुव्रता, ७ सुव्रतानंदा और ८ विमलप्रभा। ये सभी कला-विज्ञान सम्पन्न और रतिके समान रूपको धारण करनेवाली थीं। अतिशय रूपवती जयमतिके वरके विषयमें एक सत्यवादी निमित्तज्ञानीने कहा कि-हे राजन्! जो चन्द्रकवेधका अच्छी तरह वेध करेगा वही जयमतीका भर्ता होगा। तदनन्तर चन्द्रकवेधका वेध करनेके लिये राजाने समस्त राजकुमार अपने नगर बुलाये और जयमतिके पानेकी इच्छासे सब राजकुमार हर्षित होते हुए आये भी परन्तु उसके रूपमें जिसका चित्त वशीभूत हो रहा है ऐसा एक भी राजकुमार चन्द्रकवेधका वेध नहीं कर सका। अर्ककीर्ति भी मेघसेनके साथ वहां पहुँचा और चन्द्रकवेधको देखकर बहुत ही हर्षित हुआ। शास्त्रोंके जाननेवाले एवं जगत् प्रसिद्ध कीर्तिके धारक महात्माओंने चन्द्रकवेधका जैसा स्वरूप बतलाया है वह मैं यहां कहता हूँ—

तद्देशीय रूपसे कौतुक करता हुआ अर्ककीर्ति कुमार भी वहां

था। बड़े आदरके साथ किसीने उससे कहा कि यदि तुम्हें धनुर्वेदका अच्छा अभ्यास है तो हे महामति! इस चन्द्रकवेधका वेध करो। उसके कहनेसे मधुर शब्द करनेवाले अर्ककीर्तिने धनुषसे छोड़े हुए बाणसे शीघ्र ही चन्द्रक वेधका वेध कर दिया। अर्ककीर्तिकी इस कुशलतासे सबको आनंद हुआ। उसने पिता विमलवाहनके द्वारा प्रदान की हुई जयमति आदि आठ कन्याओंके साथ विवाह किया और देवियोंके समान रूप तथा कान्तिसे सुशोभित उन आठ कन्याओंके साथ भोग भोगता हुआ वह वहीं रहने लगा।

एक दिन अर्ककीर्ति उपवास ग्रहण कर जिन पूजा करके बाद रात्रिको अमलयागस्थ नामके जिन मन्दिरमें सो गया। उसके अद्‌भुत रूपसे जिसे कौतूहल उत्पन्न हो रहा है ऐसी चित्रलेखा विद्याधरी उसे सोता देख आकाश मार्गसे हर करके गई।

इस विधाधरीने सुखसे सोये हुए अर्ककीर्तिको विजयार्ध पर्वत पर ले जाकर वहांके सिद्धकूट वर्ती जिनालयमें छोड़ दिया। तदनन्तर निद्रा क्षय होनेपर जब वह जाग कर उठा तब वहांके जिन मन्दिरको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वहांकी अकृत्रिम प्रतिमाके दर्शन कर उसने भक्तिसे सैकड़ों प्रकारकी स्तुतियां पढ़ीं और फिर मण्डपमें बैठ गया। यह सब देखकर वहां जो त्रिकटदन्त नामका विद्याधर रक्षकका काम करता था वह अर्ककीर्तिके पास आकर बोला कि हे बालक! तुम विद्याधरीके द्वारा जिस लिये यहां लाये गये हो उनका प्रयोजन मैं कहता हूं तुम एकाग्रचित्तसे सुनो।

इसी विजयार्ध पर्वत पर एक अभ्रपुर नामका बड़ा भारी नगर है इसमें पवनवेग विद्याधर राज्य करते हैं गगनवल्लभा उनकी स्त्री है। इन दोनोंके नीलोत्पलके समान नेत्रोंवाली, किसलयके समान ओंठोंवाली, अनेक कलाओंको धारण करनेवाली और

शोकसे रहित एक वीतशोका नामकी पुत्री है। उसके पतिके विषयमें राजाने सन्मान पूर्वक जब निमित्त ज्ञानीसे पूछा, तब उसने यह आदेश दिया कि जिसके आनेपर सिद्धकूटवर्ती जिनालयके वज्रमय कपाट स्वयं खुल जावें वही गुणोंकी खान पुरुष शुभ लक्षणोंवाली अतिशय रूपवती तुम्हारी पुत्रीका भर्ता होगा।

हे महामते! निमित्त ज्ञानीके इन सत्य वचनोंको सुनकर राजाने मुझे यहां रख छोड़ा है। आज निमित्त ज्ञानीके वह समस्त वचन सत्य सिद्ध हुए हैं इसलिये हे भद्र पुरुष! उठो और मेरे साथ राजाके घर चलो। रक्षपालके वचन सुनकर कुमारका शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया। तथा वह शीघ्र ही उसके साथ अभ्रपुरकी ओर गया। रक्षपाल कुमारको नाना प्रकारके फूलोंसे सुवासित बगीचामें ठहराकर अपने स्वामीके समीप गया। और उससे कुमारका समाचार इस प्रकार निवेदन करने लगा—

हे नाथ! अतिशय सुन्दर शरीरके धारक आपकी सुताके भर्ताको मैं ले आया हूं, वह नगरके उद्यानमें स्थित है। इसके वचन सुनकर राजाका हृदय सन्तोषसे भर गया। उसने विकटदंष्ट्रक नामक रक्षपाल विद्याधरको दान आदिसे सम्मानित किया। अर्ककीर्तिने चतुरङ्ग सेना तथा जय जयकी मङ्गलध्वनिके साथ उसी समय श्वसुरके गृहमें प्रवेश किया। वहां पवनवेगने अपनी वीतशोका कन्या उसके लिये दी, और उसने विधिपूर्वक विभूतिके साथ उसका पाणिग्रहण किया। वीतशोकाके सिवाय इकतीस कन्याएं और भी विवाहीं तथा उन सबके साथ विद्याधरोंकी संपदाका भोग करते हुए उसने पांच वर्ष वहां बिताये। अनन्तर भूमण्डलके सुखोंका स्मरण कर वह उस अभ्रपुर नगरसे चला और चलकर अञ्जनगिरि नगरको प्राप्त हुआ। उस नगरके समीप लोगोंकी बड़ी भीड़ और दिव्य विमानोंको देखकर वह हर्षित चित्त होता हुआ वहां क्षणभरके लिये ठहर गया। इस नगरका राजा प्रभंजन था जो कि बड़ी

शक्तिके धारक लोगोंको नष्ट करनेवाला था। नीलाञ्जना नामकी उसकी शुभ स्त्री थी। नीलाञ्जनाकी आठ पुत्रियां थीं जो अतिशय रूपवती थीं, मोतियोंके समान चमकीले उनके दांत थे और यौवनसे युक्त थीं। मदना, कनका, विपुला, वेगवती, कनकमाला, विद्युत्प्रभा, जयमति और सुकान्ता ये उनके नाम थे। उन सबका शरीर अत्यंत सुंदर था। राजा जनसमुदायके साथ उद्यानमें गया था। जब वहांसे लौट कर नगरमें जानेको उद्यत हुआ तब अञ्जनगिरि नामका एक बलवान ऊँचा हाथी बिगड़ उठा उसने अपने बांधनेके स्तम्भको चूर कर डाला और महावतको मार डाला। अर्ककीर्तिने देखा कि हाथी मनुष्योंका विध्वंस कर रहा है तब वह सुवर्ण और मणियोंसे जड़े हुए अपने विमानसे उतर कर नीचे आया तथा कन्याओंको पीछे कर हाथीके आगे खड़ा हो गया।

राजा अपने परिवारके साथ अर्ककीर्तिको विस्मय भरी दृष्टिसे देखने लगा। उसने कुछ उछल कर हाथी-दांतोंमें अपने पैरोंकी ठोकर लगाई और हाथोंसे गण्डस्थलोंपर चोट कर उसे वशमें कर लिया। साथ ही अन्य बत्तीस करणोंसे उसका दमन कर उसपर सवार हो गया, और आनन्दसे नगरमें प्रविष्ट हुआ। अर्ककीर्तिको हाथीपर चढ़ा देख राजाने निमित्त ज्ञानीके आदेशसे उसे अपनी उक्त आठों कन्यायें प्रदान कर दीं। तदनन्तर उनके साथ कुछ दिन तक भोग भोगकर अर्ककीर्ति वीतशोक मनुष्योंसे सुशोभित एवं अतिशय सुन्दर वीतशोक नगरमें पहुंचा, वहां मेघसेन नामक मित्रको अपने साथ लेकर उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुण्डरीकिणी नगरमें प्रवेश किया। नगरके बाह्य द्वारपर पहुंचते ही इन दोनोंने विद्याबलके बलसे कुछ ऊंट और गधे बनाये, तथा उनमें वर्तन भरकर उनके साथ खड़े हो गये। नगरके भीतर कहीं किसी वस्तुका कर्षण करना कहीं किसीको सुगन्धित करना, कहीं ताम्बूल तथा वस्त्र आदिका वेचना, कहीं पांसोंसे द्यूत क्रीड़ा करना, तथा कहीं रत्न विक्रय करना आदि विविध कौतुक करते रहे। गणिकाका

वेष रख कर उन्होंने पिताके आगे लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला नटीका उत्कृष्ट नृत्य किया। इस प्रकार ज्ञान-सम्पन्न अर्ककीर्ति अपने विज्ञानको प्रकट करता हुआ नगरमें मनस्वी मनुष्योंके समक्ष उ... कौतुकको बढ़ानेवाले अनेक कार्य करता रहा। अन्तमें उसने विक्रियासे चतुरङ्ग सेना बनाकर नगरकी समस्त गायोंको हर लिया और युद्धके लिये राजाका आह्वान किया। गायोंका हरण जानकर राजा बहुत ही क्रोधयुक्त हुए और उसके साथ युद्ध करनेके लिये शीघ्र ही नगरसे बाहर निकले। तदन्तर घोड़ा घोड़ेके साथ, हाथी हाथीके साथ, पैदल पैदलके साथ और रथी रथवालेके साथ युद्ध करने लगे। कहीं एक हाथीने दूसरे हाथीको मार दिया, कहीं किसी घोड़ेने दूसरे घोड़ेको मार दिया, कहीं पैदल सिपाहीने दूसरे पैदल सिपाहीको नष्ट कर दिया और कहीं रथवालेने दूसरे रथको चूर्ण कर डाला। इस प्रकार मनुष्योंका क्षय करनेवाला बहुत भारी संग्राम होनेपर डरपोक मनुष्य भाग गये, धीरवीर खड़े रहे और सुर तथा असुर आनन्दसे युद्धको देखते रहे। तदन्तर अर्ककीर्तिने धनुष खींचकर पिताके समीप अपने नामसे अङ्कित वाण छोड़ा।

अर्ककीर्तिके द्वारा छोड़ाहुआ वाण मन्द मन्द गतिसे जाता हुआ पिताकी गोदमें पड़ा। अपनी गोदमें अपने पुत्रके नामाक्षरोंसे अंकित वाण देखकर राजा शीघ्र ही प्रसन्न हुआ। सन्तोषसे उसका हृदय भर गया। फिर क्या था, युद्ध बन्द कर पिता पुत्र दोनों ही वाहनसे उतर कर एक दूसरेके सन्मुख पहुंचे। दोनोंने ही समस्त शरीरमें व्याप्त होनेवाले सन्तोषसे परस्पर गले लगकर एक दूसरेका आलिंगन किया। दोनोंके ही हृदय आनन्दसे भर रहे थे और दोनों ही हर्षसे मधुर शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे। पुत्रके आनेके हर्षमें राजाने कुशल समाचार पूछकर तथा कुछ वार्तालाप कर याचकोंके लिये मन चाहा दान दिया। और शीघ्र ही अपने विजयी अर्ककीर्ति पुत्रके लिये समस्त राजाओंके समक्ष अपनी सम्पूर्ण लक्ष्मी देकर तथा बाह्याभ्यन्तर परिग्रह छोड़कर विशुद्ध

परिणामोंसे श्रीधर मुनिके समीप तप ग्रहण कर लिया। और कठिन तपश्चरणके द्वारा समस्त कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

अर्ककीर्ति क्रमसे चक्रवर्तीकी उत्कृष्ट लक्ष्मी पाकर अपने विशाल राज्यका संचालन उस प्रकार करने लगा जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र अपने विशाल राज्यका करता है। एक दिन राजा अर्ककीर्ति महलकी शिखर पर बैठे हुए थे कि इतनेमें उनकी दृष्टि हिमालयकी शिखरोंकी समान आभावाले एवं चित्र विचित्र कूटोंसे विराजित मेघपर पड़ी। वे खड़ियां मिट्टीसे उस मेघका आकार पृथ्वी पर लिखनेके लिये उद्यत हुए कि इतनेमें वह मेघ विलीन होगया। उन्होंने राज्य चलानेके योग्य, महागुणवान् यशोमती रानीसे उत्पन्न बड़े पुत्र विमलकीर्तिको बुलाया और सामन्तों तथा मन्त्रियोंके समक्ष उस यशस्वी पुत्रके लिये राज्यपद प्रदान किया।

अन्तमें महावैराग्यसे घिरे हुए राजा अर्ककीर्तिने समस्त लोगोंसे पूछकर बड़े हर्षके साथ शीलगुप्त नामक मुनिराजके समक्ष जिन दीक्षा धारण करली। उन्होंने ऐसा उग्र तप किया जो कि साधारण मनुष्योंको दुष्कर था। अन्तमें जब आयु एक माहकी अवशिष्ट रही तब सल्लेखना धारण की। और चार प्रकारकी आराधना आराध कर निर्मल अभिप्रायसे मरण किया। तदनन्तर जहां देवदेवियोंके द्वारा आनन्द किया जा रहा है ऐसे नाना वादित्रोंसे मनोहर अच्युत स्वर्गमें यह बाईस सागरकी आयुवाला देव हुआ। पहले जिसका वर्णन किया जा चुका है, ऐसी पूतिगन्धाने भी अपने आपको श्रावकके व्रतोंसे भूषित किया था और रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास रखकर समाधिमरण किया था। व्रतके प्रभावसे वह पूतिगन्धा भी पन्द्रह पल्य तक सुख भोगनेवाली उस अच्युत स्वर्गके देवकी महादेवी हुई। उसके साथ मनवाञ्छित भोग भोगकर आयुके अन्तमें तुम इस भूतल पर उत्पन्न हुए हो।

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके कुरुजाङ्गल देशमें एक

हस्तिनागपुर नामका नगर है, उसके राजा वीतशोक हैं और उनकी रानी विद्युत्प्रभा। विद्युत्प्रभा बिजलीके समूहके समान प्रभावाली है। हे राजन! पुत्र जन्मकी इच्छा करनेवाले उन दोनोंके तुम अशोक नामक कुलपुत्र हुए हो। पूतिगन्धा, जो अच्युत स्वर्गमें तुम्हारी प्रिय देवी थी, वह आयुका क्षय होनेपर स्वर्गसे च्युत होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुई है। वह अङ्गदेशकी चम्पापुरी नगरीमें वहांके राजा मघवाकी श्रीमती नामक रानीसे रोहिणी नामक पुत्री हुई है। हे राजन! वह रोहिणी तुम्हारे समीप ही स्थित है, प्रसन्नचित्त है, तुम्हारी महादेवी है और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है।

चारण ऋद्धिधारी रूप्यकुम्भ मुनिराजके सत्य वचन सुनकर अशोक राजाने उनसे पुनः प्रार्थना की कि हे नाथ! अधिक कहनेसे क्या? मुझपर अनुग्रह करके मेरे पुत्र और पुत्रियोंके भवान्तर भी कहिये। अशोकके वचन सुनकर रूप्यकुम्भ मुनि अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे देखकर पुत्र और पुत्रियोंके भवान्तर कहने लगे—

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें उत्तमोत्तम जनोंसे भरा हुआ एक शूरसेन नामका देश है। उसकी उत्तर मथुरा नामकी नगरीका शासन उस समय राजा श्रीधर करते थे। उनकी महादेवीका नाम विमला था। उन दोनोंके कमला नामकी उत्तम पुत्री थी। इसी राजाके दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ एक अग्निशर्मा नामका अग्रभोजी ब्राह्मण था। उसकी तिलका नामकी स्त्री थी। जिनके चित्त प्रेमसे मिल रहे हैं ऐसे उन ब्राह्मण ब्राह्मणीसे सात पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ अग्निभूति, २ श्रीभूति, ३ वायुभूति, ४ विशाखभूति ५ विश्वभूति, ६ महाभूति और सुभूति। देवस्मृतिमें तत्पर नाना शास्त्रोंमें निपुण और दरिद्रतासे पीडित वे सब पुरुष पटना पहुंचे। उस समय वहां सुप्रतिष्ठ राजा थे, स्वरूपा उनकी रानी थी और दोनोंके सिंहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला महा शक्तिशाली सिंहरथ

नामका पुत्र था। उसी पटना नगरमें एक विशोक नामका दूसरा भूपति था। उसकी रूपश्री नामकी भार्या थी और दोनोंके कमला नामकी पुत्री थी। माता पिताने अपनी सुन्दरी पुत्री कमला सिंहरथके लिये प्रदान की। उनका विवाह देखकर वे दरिद्र ब्राह्मण विचार करने लगे कि पापसे मुक्त रहनेवाले हम लोगोंने पूर्वभवमें समस्त दुःखोंका नाशक दयामय जैनधर्म धारण नहीं किया। धर्मयुक्त पुरुषोंको विभूतियां प्राप्त होती हैं और महा पाप करनेवालोंको महा दुःख उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार धर्म और अधर्मका प्रत्यक्ष फल देखकर उन बहुभूति आदि ब्राह्मणोंने यशोधर मुनिराजके पास जाकर आदरसे धर्मका स्वरूप पूछा। उनके प्रियवचन सुनकर यशोधर मुनिराजने उन सातों पुरुषोंके लिये उत्तम धर्मका स्वरूप कहा। साथ ही यह बतलाया कि जो मनुष्य मनुष्यपर्याय पाकर भी धर्म नहीं करता है वह मानों निधि देखकर आंखोंसे रहित होजाता है। धर्मसे ही प्राणियोंको कुल सम्पत्ति प्राप्त होती है, धर्मसे ही दिव्य रूप मिलता है, धर्मसे ही धनकी प्राप्ति होती है, और धर्मसे ही कीर्ति फैलती है। धर्म, पृथिवीपर वशीकरण मन्त्रके समान है, धर्म उत्कृष्ट चिन्तामणि है, धर्म शुभ धनकी धारा है और धर्म मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु है। अधिक कहनेसे क्या? नेत्र और इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले जो जो सारभूत पदार्थ दिखाई देते हैं हे ब्राह्मणो! वह सब धर्मका फल है।

'यह सब धर्मका फल है तथा अधर्मसे मनुष्यको दुःख होता है' ऐसा मानकर उन सभी ब्राह्मणोंने यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा धारण कर ली। तदनन्तर तपश्चरण कर उन सबने आयुके अन्तमें समाधि मरण किया जिससे वे सब सौधर्म स्वर्गमें महार्द्धिकदेव हुए व दो सागर तक सुख भोगकर वहांसे च्युत हुए और अब वीतशोक आदि रोहिणीके पुत्र हुए हैं। यह जो लोकपाल नामका आपका अभ्युदयशाली पुत्र है वह भी पूर्वजन्ममें भलु

क्षुल्लक था। निर्मल बुद्धिके धारक उस क्षुल्लकने पिहितास्रव मुनिराजके समीप बड़े आदरसे सम्यग्दर्शन आदि श्रावकके व्रत ग्रहण किये थे। वह गगन गामिनी विद्यासे समस्त कर्मभूमियोंमें स्थित अकृत्रिम सभी जिन चैत्यालयोंकी भक्तिसे पुलकित शरीर होता हुआ तीनों काल वन्दना करता था। जिन भक्तिमें तत्पर रहनेवाला वह क्षुल्लक आयुके अन्तमें समाधि मरण कर देव दुन्दुभियोंके शब्दसे युक्त सौधर्म स्वर्गको प्राप्त हुआ। पच्चीस पल्य तक दिव्य सुख भोगनेके बाद वहाँसे च्युत होकर रोहिणीके लोकपाल नामका पुत्र हुआ है। हे राजन्! यह मैंने तुम्हारे पुत्रोंका भवान्तर सम्बन्धी वर्णन किया, अब तुम्हारी पुत्रियोंका भवान्तर कहता हूँ—

इस मनोहर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें धन धान्य और मनुष्योंसे भरा हुआ कच्छ नामका देश है। उसमें जो विजयार्ध पर्वत है उसकी दक्षिण श्रेणिमें अलकापुरी है, उसके राजाका नाम गरुड़सेन था। निर्मल कान्तिकी धारक कमला राजाकी प्रिय रानी थी। उन दोनोंके चार पुत्रियाँ थीं जो रूपसम्पन्न थीं, कमलके समान मुखवाली थीं और जिनके शरीर सुवर्णके समान आभावाले थे। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—कमलश्री, कमलगन्धिनी, कमला और विमलगन्धिनी। ये चारों रूपवती पुत्रियाँ एकवार प्रसन्न चित्तसे वृक्ष फल और फूलोंसे सुशोभित उद्यानमें गई वहां सुव्रताचार्य नामक चारण ऋद्धिधारी श्रेष्ठ मुनिराजसे उन्होंने बड़े कौतुकके साथ उपवासका माहात्म्य पूछा—हे नाथ! लोकमें जो यह उपवास नामसे कहा जाता है तथा उसे लोकोत्तर धर्म बतलाया जाता है वह क्या वस्तु है? सुव्रताचार्य उन कन्याओंके वचन सुनकर उनके लिये यथाक्रमसे उपवासका लक्षण कहने लगे—

हे पुत्रियो! सिद्धान्तशास्त्रके पारगामी जिनराज अशन पान खाद्य और स्वाद्यके भेदसे आहारको चार प्रकारका कहते हैं। यह चारों प्रकारका आहार बल और कान्तिको प्रदान करनेवाला

है। जिन प्रणीत मुनिमार्गसे पवित्र मुनि इस चतुर्विध आहारका जो त्याग करते हैं वह उपवास कहलाता है। इसके सिवाय सब प्रकारका आहार ग्रहण करते हुए भी लोकमें जो उपवास माना जाता है वह कभी उपवास नहीं हो सकता। न जाने उन शास्त्रोंके ज्ञाता इस अनर्थपूर्ण बातका उपदेश क्यों देते हैं? उनके यहां लिखा है कि फल, फूल, दूध, पानी, हविर्द्रव्य, ब्राह्मणका सन्देश, गुरूके वचन और औषधि ये आठ प्राणियोंके धर्मकार्य हैं। इन आठके सेवनसे व्रत नष्ट नहीं होता। परन्तु यह निश्चित है कि इन आठका सेवन करते हुए उपवास नहीं होता और न धर्मके इच्छुक प्राणियोंको उनसे उपवासका फल ही प्राप्त होता है। हे धर्ममें तत्पर रहनेवाली पुत्रियो! पवित्र मुनिमार्गके अनुसार सब प्रकारके आहारका त्याग करनेसे ही उपवास होता है। हे पुत्रियो! अब मैं उपवासका माहात्म्य कहता हूं उसे शुद्ध चित्तसे सुनो—

यह जीव अज्ञानसे जो भयंकर पाप करता है वह सब उपवाससे इस प्रकार जल जाते है जिस प्रकार कि अग्निसे इन्धन। जिस प्रकार धूलिसे लिप्त शरीरवाले मनुष्य जलसे निर्मल होजाता है उसी प्रकार कर्मरूप धूलिसे लिप्त आत्मा उपवास रूपी जलसे निर्मल होजाती है। जिस प्रकार अग्निमें तपाया हुआ लोहा सब ओरसे मैलको छोड़ देता है उसी प्रकार व्रतोपवास रूपी जलसे आत्मा सब ओरसे कर्मरूपी मैलको छोड़ देता है। जिस प्रकार नवीन जलका आगमन रुक जानेपर सूर्य तालाबको शुष्क कर देता है उसी प्रकार इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला मनुष्य समस्त पापोंको शुष्क कर देता है। यह बात समस्त शास्त्रोंमें सुनी जाती है कि उपवाससे बढ़कर और दूसरा तप नहीं है। पापोंके क्षयका कारण होनेसे उपवास परम तप है। देव गन्धर्व यक्ष पिशाच नागेन्द्र और राक्षस-सभी लोग व्रतोपवासके प्रभावसे तत्काल वशमें हो जाते हैं। विद्या मन्त्र औषधि योग तथा अन्य सभी प्रकारके लोग

उपवाससे वशीभूत हो जाते हैं। यह संक्षेपसे हमने आपलोगोंको उपवासकी कुछ विधि और माहात्म्य बतलाया है।

मुनिराजके उक्त वचन सुनकर कन्याओंके हृदय सन्तोषसे भर गये। तदनन्तर उन कन्याओंने उन्हीं मुनिराजसे पंचमीके उपवासकी विधि पूछी, कन्याओंके वचन सुनकर योगिराज पुनः कहने लगे—जिनेन्द्र भगवान्‌ने कृष्ण और शुक्लके भेदसे पंचमी दो प्रकारकी कही है। कृष्ण पक्षमें जो पंचमी आती है वह कृष्ण पंचमी कहलाती है। भव्यजीव हर्षित चित्त होकर इस पंचमीके दिन पाँच वर्ष पाँच माहतक उपवास करते हैं। इस कृष्ण पंचमीके महत्वसे जिनशासनकी भावना रखनेवाला जीव निश्चित रूपसे समाधिको प्राप्त होता है। इस पंचमीके प्रभावसे भव्यजीव संसारमें दो तीन भव भ्रमण कर निर्बाध रूपसे सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। जिन भक्तिमें तत्पर तथा विशुद्ध हृदयका धारक जो पुरुष एक जन्ममें समाधिपूर्वक मरण करता है वह क्रोध; मान रूपी मछलियोंसे भरे हुए तथा माया और लोभरूपी तरङ्गोंसे युक्त इस संसाररूपी समुद्रमें सात आठ भवसे अधिक भ्रमण नहीं करता। जैसा कि आगममें कहा गया है—

एक्कम्हि भवग्गहणे समाहिमरणेण कुणइ जो कालं।
ण हु सो हिंडइ बहुसो सतट्ठ भवे पमोत्तूण ॥

अर्थात् जो एक भवमें समाधिमरणसे पर्याय छोड़ता है वह फिर सात आठ भवको छोड़कर अधिक भवोंमें परिभ्रमण नहीं करता।

यह प्रथम कृष्ण पञ्चमी श्रीपञ्चमी कहलाती है उसके उपवासकी विधि पूर्वोक्त प्रकार है। अब दूसरी शुक्ल पञ्चमी है उस दिन भी भव्य समूह उपवास ग्रहण करते हैं। इस व्रतकी विधि भी पूर्वव्रतकी तरह पांच वर्ष और पांच माहमें पूर्ण होती

है। व्रत पूर्ण होनेके पश्चात् पुष्प, धूप, अक्षत आदिके द्वारा जिन भगवान्‌की विशिष्ट पूजा करनी चाहिये। घण्टा चंदेवा फन्नूष आदिसे जिनमन्दिरको अलंकृत करना चाहिये। पञ्चमी व्रतका माहात्म्य प्रकट करनेवाली पांच पुस्तकें लिखाकर वितरण करना चाहिये। मुनियोंके लिये भक्तिपूर्वक आहार तथा औषध आदि दान देना चाहिये। आर्यिकाओंके लिये वस्त्र प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पञ्चमी व्रत करनेके प्रभावसे भव्य जीव गर्भादि पञ्चकल्याणक प्राप्त कर, अर्थात् तीर्थंकर होकर अविनाशी निर्वाण पदको प्राप्त करता है।

मुनिराजके वचन सुनकर उन पुत्रियोंने उन्हें वन्दना की तथा जिन मतमें आसक्त होकर पञ्चमी व्रतकी विधि ग्रहण की। इस प्रकार पञ्चमी व्रतको ग्रहण कर जिनका चित्त सन्तोषसे भर रहा है ऐसी वे कन्यायें मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार कर अपने घर गयीं। वे चारों कन्यायें घर जाकर अपने महलकी छत पर बैठी हुई थीं कि इतनेमें उनके मस्तक पर शीघ्र ही चमकती हुई बिजली गिरी जिससे वे चारों मर गईं और धर्मकी सामर्थ्यसे उसी दिन सौधर्म स्वर्गमें देवियां हुईं। देखो, एक दिनके उपवाससे ही वे किन्नरियोंके गीतसे सुसोभित स्वर्गमें देवीपदको प्राप्त होगयी। वहां पांच पल्य तक देवोंके साथ सुख भोगकर उक्त चारों ही देवियां मरणको प्राप्त हुयीं और स्वर्गसे च्युत होकर हे राजन्! इस समय रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुई वसुन्धरा आदि तुम्हारी पुत्रियां हुई हैं। ये सभी हर्षसे सहित हैं।

इसप्रकार रूप्यकुम्भ मुनिराजके पास अपने तथा अपने पुत्र पुत्रियोंके भवान्तर सुनकर राजा अशोक और रोहिणी बहुत ही सन्तोषको प्राप्त हुए। अन्य दूसरे नर नारी भी उस समय उनके भवान्तर सुनकर कोई सम्यक्त्वको प्राप्त हुए, किसीने श्रावकके व्रत ग्रहण किये और कोई उत्तम मुनिव्रतको प्राप्त हुए।

इसी बीचमें प्रसन्नचित्त तथा आश्चर्यसे जिसका चित्त व्याप्त हुआ है ऐसी वसुमती कन्या मुनिराजको प्रणाम कर इसप्रकारके वचन बोली-हे नाथ! हे साधो! मौनव्रत और उसका उद्यापन किसप्रकार किया जाता है मेरे लिये इस समय यह और भी कहिये। धर्मकी वृद्धि करनेवाले उसके वचन सुनकर रूप्प-कुम्भ मुनिराज उससे कहने लगे। जिस समय वे कह रहे थे उस समय वसुमति आदरसे हाथ जोड़कर अपने ललाटसे लगाये हुई थी।

भोजनके समय जब तक पूरा भोजन न होजाय तब तक कुछ नहीं बोलना चाहिये। हुंकार संकेत आदि दोषोंसे रहित उत्तम मौनव्रत करना चाहिये। हे तन्वि! इस प्रकार इच्छाओंके निरोध पूर्वक बारह वर्ष तक मौनव्रत करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। व्रत पूर्ण होनेपर उसका उद्यापन किया जाता है। अब मैं संक्षेपसे उसके उद्यापनकी विधि कहता हूं। पुष्प धूप आदि सामग्रीसे श्री वर्धमान स्वामीकी महामहोत्सवके साथ पूजा करना चाहिये। भक्तिसे तत्पर होकर कर्मोंका क्षय करनेके लिये समस्त संघको वस्त्रादि प्रदान करना चाहिये। और जैन मन्दिरमें उच्चस्वर करने-वाला उत्तम घंटा अनेक चंदेवाओंके साथ देना चाहिये। मौनव्रतके करनेसे यह जीव मरनेके बाद स्वर्गमें मनोहर शब्द करनेवाला तथा नाना भोगोंसे सहित देव होता है। तदनन्तर स्वर्गके सुख भोगकर पृथ्वी पर उत्पन्न होता है और चक्रवर्ती आदिके भोग भोगता है। इस प्रकार चिरकाल तक पृथिवी सम्बन्धी मनोवाञ्छित भोग भोग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करता है और कर्मरजसे रहित होकर सिद्धि पदको प्राप्त होता है, जिसके यशसे समस्त दिशाएँ व्याप्त होरही हैं और जो मन्द गतिसे गमन करती है ऐसी हे पुत्रि! अब मैं तेरे लिये मौन व्रतका प्रत्यक्ष फल कहता हूँ तू सुन–

मौन व्रतके प्रभावसे मनुष्योंके वचन कानोंको सुख पहुँचाने-वाले, मनको हरण करनेवाले, लोक-विश्वासके कारण, प्रमाणभूत

तथा सबके ग्रहण करने योग्य होते हैं। देवाशीर्वादके समान इसकी आज्ञाको सब लोग अपने मस्तक पर धारण करते हैं-यह मौन व्रतका ही उत्तम फल है। इस लोकमें जिसने चिरकाल तक मौनव्रत धारण किया है वह जो कुछ भी करता है वह सब भय रोष तथा विषको नष्ट करनेवाला होता है। मौनव्रतके प्रभावसे मनुष्योंका मुख-कमल मधुर अक्षरोंसे सहित, मनोहर और नाना प्रकारके अर्थसे सुशोभित भाषण करनेवाला होता है। चिरकाल तक मौनव्रत करनेसे समस्त लौकिक फल देनेवाली कठिनसे कठिन विद्यायें भी सिद्ध हो जाती हैं। जो कार्य पृथिवी पर असाध्य अथवा अत्यन्त संशयका कारण होता है वह कार्य भी मौनव्रत करनेवालेके वचनसे सिद्ध हो जाता है।

मुनिराज कर्मोंका क्षय करनेके लिये जो ध्यान करते हैं वह भी मौनसे ही करते हैं इसलिये मौन समस्त अर्थोंको सिद्ध करनेवाला है। मौन व्रतको धारण करनेवाला कोई पुरुष अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतसे सहित होता हुआ सिद्ध भगवानका भक्त हो क्रमसे मोक्षको भी प्राप्त करता है।

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर और उन्हें मन वचन कायसे नमस्कार कर कन्या वसुमतीने उनके समीप मौनव्रत ग्रहण किया। रूप कुम्भ मुनिराजके पास पूर्वभव तथा धर्मका स्वरूप सुनकर अशोक आदिने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और फिर हस्तिनागपुरकी ओर गमन किया। अशोक, रोहिणी तथा उनके पुत्र पुत्रियां सभी अपने भवनमें प्रवेश कर विपुल भोगोंको भोगते हुए प्रसन्न चित्तसे रहने लगे।

एक बार वर्षवृद्धिके दिन राजा अशोक स्नान कर महादेवी रोहिणीके साथ हर्ष पूर्वक सिंहासन पर बैठे थे। समीपमें बैठी हुई रोहिणीने अपने पति अशोकके कानके पास काशके फूलकी

आमावाला एक सफेद बाल देखा। देखा ही नहीं उसे अपने हाथसे निकाल कर अशोकके कमल तुल्य हाथ पर रख दिया। ज्योंही राजाने महादेवीके द्वारा अर्पित सफेद बाल देखा त्योंही वे भोग और शरीरकी निन्दा करते हुए वैराग्यका चिन्तवन करने लगे। इसी बीचमें वनपालने आकर राजासे कहा—हे महाराज! उद्यानमें श्री वासुपूज्य जिनराज पधारे हैं। वनपालके वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सिंहासनसे उठकर और उस दिशामें सात पद जाकर श्री वासुपूज्य स्वामीको परोक्ष नमस्कार किया। वनपालको पुरस्कार देकर सन्मानित किया, और आनन्द भेरीके शब्दसे नगरवासी लोगोंको इसकी खबर दी। लोकपाल कुमारके लिये राज्य-लक्ष्मी सौंपी और स्वयं महाविभूतिसे सम्पन्न होकर आदरके साथ वनके प्रति चले। वहां उन्होंने श्री वासुपूज्य स्वामीकी भक्ति-पूर्वक तीन प्रदक्षिणाएं देकर नमस्कार किया और फिर उन्हींके समीप जिन दीक्षा धारण कर ली। अपरिमित प्रभाके धारण करनेवाले अशोक योगिराज इन्द्रोंके द्वारा नमस्कृत श्री वासुपूज्य स्वामीके गणधर हो गये। तदनन्तर बहुत समय तक कठिन तप तपकर अन्तमें कर्मोंका क्षय कर उत्तम निर्वाण नगरको प्राप्त हुए।

महादेवी रोहिणीने भी समस्त परिग्रह छोड़कर और श्री वासुपूज्य भगवानको नमस्कार कर सुमति नामक गणिनीके पास तप धारण कर लिया। रोहिणीने सामान्य स्त्रियोंको दुष्कर नाना-प्रकारका तप कर आयुके अन्तमें कर्मोंकी हानि करनेके लिये सल्लेखनाकी विधि धारण की, जिससे स्त्री पर्यायको छेदकर वह समाधिमरणके प्रभावसे अच्युत स्वर्गमें दिव्य लक्ष्मीको धारण करनेवाला देव हुई। देखो, एक ही उपवाससे रोहिणीने सामान्य जनोंको दुष्प्राप्य सुखकी परम्परा प्राप्त की। धर्मका माहात्म्य अचिन्त्य है।

अशोकरोहिणी व्रतके उद्यापनकी विधि।

जिस किसीको अपने व्रतका उद्यापन करना हो वह विधिपूर्वक शक्ति अनुसार सुन्दर सामग्री एकत्रित करे और साधर्मीजनोंको द्रव्य ले जानेके लिये अपने घर पर आमंत्रित करे। साधर्मीजन भी गाजेबाजेके साथ उद्यापन करानेवालेके घर जावे और वहां भजन आदि गावे। विधि करानेवाला आचार्य घरकी किसी पवित्र जगहमें चांवलोंका स्वस्तिक बनाकर उस पर एक घट रक्खे। घट रखनेके पहले उसमें सवा रुपया या फल पुष्पादि डालकर सूत्र नारियल और पंचरंगा सूतसे उसे वेष्टित कर ले। उस पर आम या अशोकके हरित पत्र तथा दूर्वा और पुष्पमाला वगैरह मांगलिक पदार्थ भी लगा देवे। घटके पास ही एक घृतका चोमुखी दीपक जलावे और फिर मंगलाष्टक या मंगल पंचक पढ़ता हुआ उसी घट पर पुष्प डाले।

यह सब क्रिया हो चुकने पर साधर्मीजन द्रव्य लेकर गाजेबाजेके साथ मन्दिरमें जावें, उन्हींके साथ इकट्ठी हुई स्त्रियाँ अथवा उद्यापन करानेवाले महाशय उस घटको मन्दिरजीमें ले जावे। मन्दिरमें वेदिकाके सामने अथवा किसी विस्तृत स्थानमें चंदोवा बांधकर तख्त पर मुंगी अथवा शुद्ध रंगमें रंगे हुए चांवलोंका मांडना बनावे।

सबसे पहले एक छोटा बलय खींचकर ॐ लिखे फिर अष्टदल कमल बनावें उसके बाद पांच दलका एक कमल बनावे। कमलके दलोंको विभिन्न रंगोंसे सुन्दरताके साथ भरकर अलंकृत करे। घरसे लाया हुआ कलश इसी मांडनेके एक कोण पर चांवलोंका स्वस्तिक बनाकर रख देना चाहिये। मण्डलके बीचमें ऊँची चौकी या ठौना रखकर उस पर सिंहासन सहित श्री वासुपूज्यस्वामीकी प्रतिमा बिराजमान करे। यदि मन्दिरमें श्री वासु-पूज्यस्वामीकी प्रतिमा विद्यमान न हो तो अन्य तीर्थंकरकी प्रतिमा भी बिराजमान की जा सकती है। पूजाकी समस्त सामग्री शुद्धतापूर्वक तैयार कर मांडनके सामने दूसरे तख्त पर जमा लेना चाहिये।

विधिके प्रारंभमें अपनी अपनी रुचिके अनुसार पंचामृत या साधारण जलसे श्री वासुपूज्यस्वामीकी प्रतिमाका अभिषेक करना चाहिये, फिर नित्य पूजाका स्थापन कर अष्टदल कमल पूजा करे। अष्टदल कमलकी पूजा अष्टकर्म रहित सिद्ध भगवान्‌की पूजाके रूपमें की जाती है। उसके बाद श्री वासुपूज्यस्वामीके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकको पृथक पृथक पूजाएँ जैसी कि उद्यापनमें लिखा है, करना चाहिये। पूर्णार्घ अथवा जयमालमें नारियलका गोला चढ़ाना चाहिये। प्रत्येक कल्याणकी पूजाके बाद ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनाय नमः इत्यादि मन्त्रोंकी एक एक माला फेरना चाहिये। पूजाओंके बाद बृहत् शान्ति मन्त्रसे अखण्ड

जलधारा देना चाहिये। फिर शान्ति विसर्जन प्रदक्षिणा स्तुति आदि क्रियाए करना चाहिये। उद्यापनके हर्षमें आहार-औषधि-ज्ञान और अभय इन चार दानोंमें शक्ति अनुसार द्रव्य निकालना चाहिये।

इसके बाद यदि आगे व्रत करनेकी शक्ति नहीं हो तो हाथमें एक नारियल ले प्रतिमाजीके समक्ष खड़ा होकर नौवार णमोकार मन्त्र पढ़े और विनीत भावसे कहे कि-"हे भगवन्! शक्ति अनुसार यह महान व्रत मैंने........समय तक धारण कर उद्यापन किया, अब शक्तिके अभावसे आगे धारण करनेमें असमर्थ हूं अतः व्रत भाण्डारमें रखिये। इतना कहकर वेदी पर नारियल चढ़ाता हुआ नमस्कार करे। रोहिणी व्रतकी कथा पढ़कर सबको सुनावे और उसीका माहात्म्य सबको बतलावे जिससे अन्य लोगोंकी रुचि भी इस व्रतके धारण करनेकी ओर बढ़े। व्रत कथाकी पुस्तकें साधर्मी भाइयोंमें वितरण करे।

—पन्नालाल जैन 'वसंत', साहित्याचार्य-सागर।

बृहत् कथाकोष

इस कथाकोषमें राजकुमार, सोमशर्मा, विष्णुदत्त विद्युत्चोर, यशोरथ, जय.विजय. रेवती, चेलना, श्रेणिक, सोमशर्मा व वारिषेण, विष्णकुमार, वज्रकुमार, विनयधर, बुद्धिमती, प्रियव्रीरा, सोमशर्मा, वीरभद्र, अभिनन्दन मुनि, ज्ञानविनय, ज्ञानाचरण, गुरुनिन्हव, व्यंजनहीन पाठ, अर्थहीन पाठ, उभयशुद्धि, नागदत्त, शूरमित्र, वासुदेव, अविवेकी हँस, हरिषेण, विष्णु व प्रद्युम्न, चौलुक्क, चौपर, सरसों ध्यान, द्युताख्यान, जन्म, मनुष्य पर्याय, चन्द्रवेध, कछुवा, समुद्रदत्त, वसुमित्र, जिनदत्त, लहुच, पद्मरथ; ब्रह्मदत्त, जिनदास, रुद्रदत्त और श्रेणिक इस प्रकार ५५ जैन कथाओंका संग्रह है जो संस्कृतसे पं० राजकुमार शास्त्री साहित्याचार्य कृत सुलभ हिन्दी भाषामें है। पृ० २३२ पक्की जिल्द मू० २॥)

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत।

श्रीरोहिणीव्रतोद्यापनम्।

(रचयिता:—पं० पन्नालालो जैनः साहित्याचार्यः)

वृषभादिसुवीरान्तान् जिनानानम्य भक्तितः।
उद्यापनमहं वक्ष्ये रोहिणीव्रतकस्य हि ॥ १ ॥
आदौ श्रेयोऽष्टकं पाठ्यं पुष्पक्षेपणसंयुतम्।
कार्यः श्रीवासुपूज्यस्य जिनस्याभिषवस्ततः ॥ २ ॥
पाञ्चकल्याणिकी पूजा विधेया पुनरस्य च।
शान्ति र्विसर्जनं कार्यं स्तुतिश्चापि परिक्रमः ॥ ३ ॥
चतुर्विधं महादानं देयं भक्तिपुरस्सरम्।
नमः श्रीवासुपूज्याय जिनाय परमात्मने ॥ ४ ॥
इति मन्त्रजपः कार्यः स्थिरीभूतेन चेतसा।
नानोपकरणाद्यैश्च विधातका प्रभावना ॥ ५ ॥

१—उद्धृतम्।

श्रेयोऽष्टकम् ।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभा,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ।
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ १ ॥

नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः ख्याताश्चतुर्विंशति,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ।
ये विष्णुप्रतिविष्णुलाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशति-
स्त्रैलोक्याभयदास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ २ ॥

ये पञ्चौषधऋद्धयः श्रुततपो वृद्धिं गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला चाष्टौ विधाश्चारिणः ।
पञ्चज्ञानधराश्च येऽपि विपुला ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलाश्च ते मुनिवराः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ३ ॥

ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः-
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु ।
इक्ष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ४ ॥

कैलासो वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरी,
चम्पा वा वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलोऽर्हताम् ।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरो नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावलयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जायन्ते जिनचक्रवर्तिबलभृद् भोगीन्द्रकृष्णादयो,
धर्मादेव दिगङ्गनाङ्गविलसच्छश्वद्यशश्चन्दनाः ।
तद्धीना नरकादियोनिषु नरा दुःखं सहन्ते ध्रुवं,
ते स्वर्गात्सुखरामणीयकपदं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ६ ॥

सर्पोहारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः ।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किम्वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ७ ॥

आकाशं मूर्त्यभावादधकुलदहना दग्निरूर्वी क्षमाढ्या,
नैःसङ्ग्याद्वायुरापः प्रगुणशमतया स्वात्मनिष्ठः सुयज्वा ।
सोमः सौम्यत्वयोगाद्रविरिति च विदुस्तेजसः सन्निधानाद्,
विश्वात्मा विश्वचक्षुर्वितरतु भवतां मङ्गलं श्रीजिनेशः ॥८॥

इत्थं श्रीजिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्करं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखात् ।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपाय-रहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥ ९ ॥

(इसके बदले निम्नलिखित मङ्गलपञ्चक भी पढ़ा जा सकता है)

मङ्गलपञ्चकम् ।

हिन्दीगीतिकाछन्दः ।

गुणरत्नभूषा विगतदूषाः सौम्यभावनिशाकराः,
सद्बोधभानुविभाविभासितदिक्चया विदुषांवराः ।

निःसीमसौख्यसमूहमण्डित योगखण्डित रतिवराः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्रीवीरनाथजिनेश्वराः ॥ १ ॥
सद्ध्यान तीक्ष्ण कृपाणधारा निहतकर्मकदम्बकाः–
देवेन्द्रवृन्द नरेन्द्रवन्द्याः प्राप्तसुखनिकुरम्बकाः ।
योगीन्द्रयोगनिरूपणीया प्राप्तबोधकलापकाः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते सिद्धाः सदा सुखदायकाः ॥ २ ॥
आचारपञ्चक चरण चारण चुञ्चवः समताधराः,
नाना तपोभरहेति हापित कर्मकाः सुखताकराः ।
गुप्तित्रयी परिशीलनादि विभूषिता वदतांवराः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्री सूरयोऽर्जित शंभराः ॥ ३ ॥
द्रव्यार्थभेदविभिन्नश्रुतभरपूर्णतत्त्व निभालिनो,
दुर्योग योग निरोध दक्षाः सकल वरगुण जालिनः ।
कर्तव्यदेशनतत्परा विज्ञानगौरवशालिनः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते गुरुदेवदीधिति मालिनः ॥ ४ ॥
संयमसमित्यावश्यका परिहाणि गुप्ति विभूषिताः,
पञ्चाक्षदान्ति समुद्यताः समतासुधा परिभूषिताः ।
भूपृष्ठविष्टरशायिनो विविधर्द्धिवृन्द विभूषिताः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते मुनयः सदा शमभूषिताः ॥ ५ ॥

(मङ्गलाष्टक पढ़ चुकनेके बाद श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रका अभिषेक करे । अभिषेकके बाद ॐ जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु आदि पढ़कर नित्य पूजाके अनुसार स्थाप करना चाहिये स्थापके बाद अष्टदल कमल पूजा करना चाहिये । बीचमें ॐ लिखकर आठों दिशाओंमें आठ पांखुरी बनाना चाहिये ।)

अष्टदलकमलपूजा ।

अनुष्टुप् छन्द ।

अर्हदादिपदाकारमोकारं बिन्दुसंयुतम् ।
कामदं मोक्षदं वन्दे कर्मारातिलयप्रदम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं मण्डलमध्यगताय पञ्चपरमेष्ठिरूपाय ॐकारायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञानावरणसंनाश लब्धानन्तसुबोधनम् ।
वन्दे सिद्धं स्वयं सिद्धं कर्मशत्रुविशोधनम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

दृगावरणसंघातमञ्जितानन्तदर्शनम् ।
वन्दे सिद्धं जगत्कान्तं भव्यजन्तुविहर्षणम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

वेद्यबाधासमालब्धा व्याबाधत्वमहागुणम् ।
वन्दे सिद्धं स्मराविद्धं क्षीणकर्मद्विषद्गणम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं वेद्यकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोहभूपालभूपातलब्धसम्यक्त्वरत्नमणिम् ।
वन्दे मुक्तं गुणैर्युक्तं राजज्ज्ञानदिवामणिम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अवगाहगुणोपेतमायुः कर्मविनाशनात् ।
वन्दे शुद्धं महाबुद्धं सिद्धं त्रैलोक्यदर्शनात् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं आयुःकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नामकर्मप्रहारेण सूक्ष्मत्वगुणशालिनम् ।
वन्दे मुक्ति महीकान्तं लोकत्रयनिभालिनम् ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं नामकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

गोत्रगोत्रविदारेण प्राप्तागुरुलघुत्वकम् ।
वन्दे सिद्धिवधूस्वान्त महा मोहनकारकम् ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अन्तराय विनाशेन प्राप्तानन्त महाबलम् ।
वन्दे लोकशिखारूढं लोकातीतं सुनिश्चलम् ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसके बाद नीचे लिखी हुई पूजाएं करना चाहिये ।)

श्री वासुपूज्य जिन गर्भकल्याणक पूजा ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ।

हे कर्मारिकृपाण मोहतिमिर प्रध्वंसतेजःपते,
हे सज्ज्ञानविभाविभासितजगद् हे मोक्षलक्ष्मीपते ।
हे श्रीमत् जगतीपते जिनपते त्वं वासुपूज्यो महा,
नागत्यात्र महोत्सवे नततमानस्मान्सनाथान्कुरु ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

वसन्ततिलकाछन्दः ।

गर्भागमे त्रिदिवनाथ समूहवन्द्यं,
वन्द्य नरेन्द्रनिचयैर्जगतीपतिं तम् ।
भागीरथी रविसुता शशिजा समुत्थैः,
नीरैर्यजे जिनपतिं खलु वासुपूज्यम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

देवेन्द्रवृन्दपरिवन्दितपादपद्मं,
कर्माटवी शित कुठारमयत्नसिद्धम् ।
सच्चन्दनैरलिकदम्बकमोददक्षैः,
संपूजयामि जिनपं किल वासुपूज्यम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

येनाश्रिता किल मही ललिता बभूव,
यक्षेन्द्रमोचितसुरत्नचयैः समन्तात् ।
तं वासुपूज्यजिनपं जिनपप्रधान--
मर्चामि तण्डुलचयैरमृतांशुतुल्यैः ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वर्गावतारसमये जननी यदीया,
नाकाधिनाथनिचयैर्महिता बभूव ।

रत्नोच्चयैरलिकदम्बकचुम्बितैस्तं,

पुष्पैर्यजामि जिनपं वसुपूज्यपुत्रम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आनन्दमन्दिरमनिन्द्यममन्दवन्द्यं,

दैत्यारिवृन्दपरिवन्दितपादपद्मम् ।

श्रीवासुपूज्यजिनपं दिनपप्रतापं,

नैवेद्यकैर्ननु यजे रसनाप्रियैश्च ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सज्ज्ञानदीपकनिरस्ततमोऽवकाशं,

विध्वस्तमोहमहिमानममेयमानम् ।

संपूजयामि रुचिरैर्मणिदीपपुंजैः,

पूज्यं सुरैर्जिनपतिं वसुपूज्यजातम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सद्ध्यानतीक्ष्ण करवाल निकृत्तकर्म-

शत्रुं समस्तजनमित्रमवद्यहीनम् ।

श्रीवासुपूज्यजिननाथमहं यजामि,

धूपैः सुगन्धितदिशैर्मुदितालिवृन्दैः ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वात्मप्रदेशपरिशोभितलोकशीर्ष,

जन्माद्यतीतमतिदुःखचयं विबोधम् ।

वातादपूगखर्जूरलवङ्गकाद्यै-

रर्चामि मञ्जुलफलैर्जिनवासुपूज्यम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सक्षीरचन्दनसदक्षतपुष्पपुञ्ज,

नैवेद्यदीपवरधूपफलात्मकेन ।

अर्घेण वन्दितपदं दिविजेन्द्रवृन्दैः,

श्रीवासुपूज्यजिनपं किल पूजयामि ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आर्याछन्दः ।

आषाढकृष्णपक्षे षष्ठीदिवसे जयावतीदेव्याः ।

गर्भे कृत प्रवेशं दिविजैर्विहितोत्सवं भक्त्या ॥ ११ ॥

अर्चामि वासुपूज्यं पूज्यं मर्त्यामरेन्द्रवृन्देन ।

पूर्णार्घेण निरन्तरमद्योद्यापनसुपूजायाम् ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं आषाढकृष्णपक्षे षष्ठ्यां तिथौ कृतगर्भप्रवेशाय श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ।

यद्गर्भस्य महोत्सवे सुरचयैराकाशमध्यागतैः
नानावर्णधरैर्विचित्रमणिभिः संछादितं भूतलम् ।
शुभ्रमद्रत्नधरैस्तदीयसुगुणै रेजे यथा लाञ्छितं,
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं सनयं सदा सौख्यदम् ॥१३॥

चतुष्पदी (१६ मात्रा) ।

चम्पापुर संज्ञितवरनगरे सर्वदिशाशोभितनर निकरे ।
नृपवसुपूज्यशुभभूप त्रिभुवनवन्दित सुन्दररूपः ॥ १४ ॥
जयावती भार्या किल तस्याखिलनारीकृतचरणनमस्या ।
आषाढस्य श्यामलपक्षे षष्ठीदिवसे सुकृतपक्षे ॥ १५ ॥
यामिन्याः किल पृष्ठे भागे ज्योतिश्चक्रविशोभितरागे ।
मञ्जुलपर्यङ्कस्थाकाशे रम्यकौमुदीनिचयमहासे ॥ १६ ॥
पश्यति स्म स्वप्ने सुरनागं मञ्जुलतरगण्डद्रुतदानम् ।
वृषभं धवलं शुभमृगराजं सुन्दरनखदन्तावलिभाजम् ॥ १७ ॥
कमलाकलशस्नपनं रम्यं मालायुगलं षट्पदगम्यम् ।
दीवापति रजनीपतिबिम्बं सुन्दरमीनयुगं हतबिम्बम् ॥ १८ ॥
कनककलशयुगलं कासारं कमलभ्राजितसकलाकारम् ।
कल्लोलाकुलितं नदनाथं सिंहपीठमुचितरत्नसनाथम् ॥ १९ ॥

अमरविमानं ह्यतिरमणीयं फणिपतिभवनं ह्यतिकमनीयम् ।
रत्नराशिमनलं विलसन्तं स्वप्नसमूहमिमं विहसन्तम् ॥ २० ॥
संददर्श निद्रापरिलग्ना वल्लभप्रीतिपयोधि निमग्ना ।
प्रत्यूषे पतिनिकटं याता पत्या कृतसत्कारं प्राप्ता ॥ २१ ॥
पृष्टवती विनयेन युता तं स्वप्नसंघपरिणाम महो तम् ।
बुद्ध्वावधिबोधेन नृपस्तं परिशशंस स्वप्नावलि फलितम् ॥ २२ ॥
अद्य प्रिये तव गर्भे प्राप्तस्तीर्थंकरः शुभलक्षणमाप्तः ।
तस्य विभवमंते कथयन्ति गुणगौरवमस्यैव वदन्ति ॥ २३ ॥
तत्कालं सुरलोकात्प्राप्ता इन्द्रनिदेशचयं संप्राप्ताः ।
श्रीमुख्या निर्जरजनवनिताः सेवा कौशलभारविलसिताः ॥ २४ ॥
जिनजननीं सेवितुमायाता भूपस्य भवनं संप्राप्ताः ।
असेवन्त विविधं नृपनारीं दुर्गुणगणविनिपातनमारीम् ॥ २५ ॥
चतुर्णिकायामरपतिनिचयाः पवनाकम्पित सुन्दर निचयाः ।
गर्भोत्सवं विधातुं प्राप्ताश्च भूपतिभवनं संयाताः ॥ २६ ॥
वस्त्राभरणै विविधप्रकारैः कल्पवृक्षजैर्नूतनभारैः ।
जिनजननीं जिनजनकं भक्त्या समार्चिपुः शुभप्रीतिप्रसक्त्या ॥
गीतं नृत्यं नव रसकलितं चक्रे सुरीचयः परिललितम् ।
यक्षपती रत्नानि ववर्ष मर्त्यमनस्तेनाति जहर्ष ॥ २८ ॥
कोऽप्यधनो न बभूव तदानीं कोऽपि महारुग्णो न तदानीम् ।
संबभूव नहि कोऽपि वियुक्तः संबभूव नहि कोऽप्युन्मत्तः ॥२९॥

सर्वे शर्मयुता विलसन्ति स्वेष्टजनेन युता विहसन्ति ।
कृत्वा गर्भमहोत्सवममरा व्रजन्ति स्म स्वर्गं सुखनिकराः ॥३०॥
साक्षान्नेत्र रसायनमेतं गर्भोत्सवमानन्दसमेतम् ।
ये पश्यन्ति जना वरभक्त्या विस्मृतनयननिमेषप्रसक्त्या ॥३१॥
धन्यतरा भुवि ते किल सन्ति परजन्मन्यपि तथा भवन्ति ।
पञ्चमकालभवा वयमत्र सीदामो गुणराजि पवित्र ! ॥ ३२ ॥
छिन्नपक्षयुगपक्षिगणा इव भग्नपादयुगलाः पुरुषा इव ।
गमनागमनसुशक्तिविहीना महाजनोचितभाग्यविहीनाः ॥ ३३ ॥
किन्तु चेतसा ध्यानं तस्य कुर्मः सम्प्रति गर्भमहस्य ।
इह सन्तोऽपि वयं, महितेन भवतु दुःखहानिः किल तेन ॥३४॥

हिन्दी रोला छन्दः (२४ मात्राः)

वासुपूज्य जिनराज महागुणभारविभासिन्,
ध्यानकृपाणनिकृत्तकर्मभर हे गुणहासिन् ।
गर्भवासजं दुःखचयं मम दूरीभूयात,
त्वत्प्रसादतो मुक्तिरमा मे निकटीभूयात् ॥३५॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीवासुपूज्यजिन जन्मकल्याणकपूजा

शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ।

दृष्ट्वा येन भवस्य दुःखसरणिं राज्यादिकं प्रोज्झितं,
बाल्येनैव पराजितो हरिसुतो येन क्षितौ तेजसा ।
यं ध्यायन्ति मनीषिणः प्रतिदिनं मोक्षस्य संप्राप्तये,
तं पूज्यं वसुपूज्य राज्यतनयं भक्त्या भजे सन्ततम् ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्राव-तरावतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

द्रुतविलम्बितच्छन्दः ।

हतविधिं सुविधिं सुनिधिं यजे जिनपतिं सुमतिं सुमतिप्रदम् ।
कनककुम्भभृतेन सुवारिणा सुग्नुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सदुपदेशसमूह तिरस्कृताखिलभवातपमानपवर्जितम् ।
मलयजेन यजे मिलितालिना सुग्नुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसार-तापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

पिहित जन्मजरामृति पीडितं सुरचयोरकृत पीडनमापितम् ।
अग्निमभेत यजेऽक्षतराशिना सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वविभवेन दराजितमन्मथं प्रकटितोत्तममोक्षपथं शुभम् ।
वरलतान्तचयेन यजे जिनं सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

विबुधवन्दितपादसरोरुहं सुमतिपातितपापमहीरुहम् ।
वरतमेन यजे चरुणा जिनं सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

तनुविभाविनिवासितदिक्चयं हततमाखिललोकभयं मुदा ।
रुचिरैर्हि यजे वरदीपकैः सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

हुततमा भुवि येन तपोऽनले निखिलकर्मचया विमयोज्ज्वले ।
तमिह धूपचयेन यजे मुदा सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

अखिलकर्मसयत्नचयाहता ननु तपो महसा भुवि येन वै ।
फलचयेन यजे विविधेन तं सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

विमलदर्शनबोधविभासितं सकलवृत्तसुवित्तसमन्वितम् ।
परियजेऽर्घचयेन जिनोत्तमं सुरनुतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ-पदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शालिनीच्छन्दः ।

मासे रम्ये फाल्गुनाख्ये मनोज्ञे पक्षे कृष्णे भूतसञ्ज्ञाभिरामे ।
दर्शान्पूर्वे वासरे जन्मलब्ध्वा येनाभातो मध्यमालोकहोषः ॥ ११ ॥
नीत्वा शीर्षे देवशैलस्य देवैर्यः सिक्तोऽभूत्क्षीरवाराशितोयैः ।
अर्घं धृत्वा हस्तयोरर्चनार्थे भक्त्याहं तं वासुपूज्य जिनेन्द्रम् ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीवासु-पूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

प्रोत्तुङ्गे गिरिराजरम्यशिखरे क्षीरोदधेराहृते,
अच्छचन्द्रकलाकलापतुलितैरम्भोभिरानन्दिताः ।
जातं यं मुदिताः सुराः पतिवराः संसिक्तवन्तः स्वयं,
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं सनयं सदा सौख्यदम् ॥ १३ ॥

चतुष्पदी (१६ मात्राः)

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशवारे स्वात्मवशीकृतमङ्गलभारे ।
चम्पायां वसुपूज्यनृपस्य जयावतीदेवीमहितस्य ॥ १४ ॥

गृहेऽभवज्जिनजन्म प्रशस्तं पापतापहरणं कृतहस्तम् ।
सिंहपीठकम्पनतो ज्ञातं निर्जरपतिना जिनपतिजातम् ॥ १५ ॥
ज्योतिषगृहेऽभवद्धरिनादो भवनामर भवने दरवादः ।
व्यन्तरनिलये पटहप्रणादः सुरालये वा घण्टानादः ॥ १६ ॥
क्षणं श्वभ्रजाता अपि जाताः सुखयुक्ता दूरीकृतव्राताः ।
त्रिजगन्मध्ये क्षोभोभूतः सकलमध्यलोकः परिपूतः ॥ १७ ॥
मतिश्रुतावधि बोधसुयुक्तो जिनोऽभवद् दुःखावलि मुक्तः ।
चतुर्विधामरनाथ समूहा दूरीकृतसकलप्रत्यूहाः ॥ १८ ॥
निज निज शुभपरिवारोपेताः समागता वरभक्ति समेताः ।
समागतः प्रथमः सुरराजः स्वाधिष्ठानीकृत गजराजः ॥ १९ ॥
पुलोमजान्तर्गेहं गत्वा जिनं मातृनिकटस्थं नत्वा ।
कृत्रिमनिद्रावर्ती विधाय जिनजननीं जिनपतिमादाय ॥ २० ॥
बहिरागत्य पाणि युगमध्ये ददौ निलिम्पपतेः शुभमध्ये ।
सोऽपि सुन्दरं जिनपति देहं विविधचिह्नवरलक्षणगेहम् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा विस्मितमना बभूव दशशतनेत्रयुतः सम्भूय
निजोत्सङ्गमध्ये तं धृत्वा नमो जयध्वनि [illegible] खलु श्रुत्वा ॥ २२ ॥
अधिष्ठाय धवलं गजराजं विविधवक्त्रवदनावलिभाजम् ।
संचचाल सुरसैन्यसमूहो गगने संरचिताखिल व्यूहः ॥ २३ ॥
शनैः शनैः समवाप सुतुङ्गं मेरुनामधरणीधर शृङ्गम्
पाण्डुकवने तत्र विनिवेश्य सुरसेनां सकलां विनिवेश्य ॥ २४ ॥
पाण्डुक शिलासिंहपीठे तं जिनबालं गुणमालसनन्तम् ।
देवश्रेणियुगं प्रविधाय जिनसवनं चित्तं संधाय ॥ २५ ॥

पञ्चमसागरस्थशुभसलिलं दूरीकृतजनताखिलकलिलम् ।
कनकघटैरानाय्य प्रमक्त्या देववृन्दसहयोगसुसक्त्या ॥ २६ ॥
अभिषिषेच सुरराट् जिनबालं दूरोन्नामितसुरततिमालम् ।
स्वच्छजलं कलशेभ्यः पतितं व्योमनिमञ्जुलकलकलसहितम् ॥२७॥
सुरीसमूहश्चक्रे नृत्यं किन्नरपतिकृतगीतसुकृत्यम् ।
शची चकाराभरणनियोगं जिनपतिदेहे शुभगाभोगम् ॥ २८ ॥
पुनरागत्य सुराः संभेजुर्विविधमहोत्सवभरं विरेजुः ।
चम्पापुरे ताण्डवं कृत्वा पुनःपुनः सुरवरं नत्वा ॥ २९ ॥
विदधे जन्ममहोत्सवभारं निखिलासुरनरमोदनकारम् ।
वासुपूज्य इति नाम विधाय गुणावलिं चेतसि संधाय ॥ ३० ॥
देवा जग्मुरात्मसंवासं कुर्वन्तोऽन्योन्यं मृदुहासम् ।
नराधिपो वसुपूज्यसुनामा महीतलेप्रसृताखिलधामा ॥ ३१ ॥
संचकार वरमङ्गलभारं पौरजनामोदनसंचारम् ।
दृष्ट्वा महोत्सवं तं मार्गे लोकाः प्रापुः पुण्याचारम् ॥ ३२ ॥
वयं परोक्षं ध्यानं कृत्वा दुःखदुर्गतं किल हत्वा ।
नीराद्यर्चां वितनोमि पुनः पुनः स्तवनं वितनोमि ॥ ३३ ॥
वासुपूज्य जिनराज नमामि तमोनाश दिनराज नमामि ।
कर्मद्विप मृगराज नमामि मोदसिन्धु द्विजराज नमामि ॥३४॥

मयूरगतिच्छन्दः (सवैया तेइसा)

हे वसुपूज्य नरेन्द्रतनूज ! तमस्ततिवान दिवाकर देव,
मुक्तिरमामुख नील पयोज निशाकर सौख्य सुधा भरशालिन् ।

ध्यान कृपाण निकृत कुकर्म कलाप निरन्त पराक्रम भासिन्,
मह्यमहो भवसागर तार वरं स्ववलम्बनमत्र हि देहि ॥ ३५ ॥

ॐ ह्रीं जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

वासुपूज्य जिन तपःकल्याणक पूजा ।

कामस्त्रीमुख चारुपत्र निचय प्र दीप्त दावानलं,
बुद्धि श्री तत्कीर्तिकान्तिविलसत्सद्रत्नरत्नालयम् ।
लोकानन्दथु सागरोच्छितिकरं राका निशावल्लभं,
वन्देऽहं वसुपूज्य राजतनयं मोक्षार्गलोद्घाटकम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री तपःकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर सम्वौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री तपःकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री तपःकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

भुजङ्गप्रयातच्छन्द ।

हतो येन मोहो गतो लोकबाह्य,
सुविद्यानवद्या धृता येन चित्ते ।
जलैर्भर्मपात्रस्थितैः स्वच्छरूपै,
र्मुदाह जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

विरागेण येन क्षतः कामभूपो,
हता बोध तन्द्रा प्रबुद्धात्मकेन ।
द्विरेफ प्रियेण महाचन्दनेन,
मुदाहं जिनं यजे वासुपूज्यम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

गुणौघेन युक्तं महा दोषमुक्तं,
हसन्तं महेशं जिनं मारसैन्यैः ।
सितेनाक्षतेन प्रभामञ्जुलेन,
मुदाहं जिनं तं भजे वासुपूज्यम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा ।

अकामं विरामं विरागं विभागं,
महान्तं भयान्तं सदा शं प्रयान्तम् ।
लतान्तव्रजेन द्विरेफप्रियेण,
मुदाहं जिनं तं भजे वासुपूज्यम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुखस्योपदेशोऽर्पितो जीवजाते,
सदा येन दुःखानि दूरीकृतानि ।

निवेद्यं निवेद्यन वेद्यान्तमाप्तं,

मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रबुद्धा त्रिलोकी यदीयोपदेशै,

र्यदीयेन बोधेन शिष्टं न किञ्चित् ।

प्रदीपैः प्रदीपै र्महारत्नरूपै,

र्मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

हतं येन कर्मारिसैन्यं प्रचण्डं,

वृतं शर्म येनापवर्गोपपन्नम् ।

सुधूपेन पाटीरजातेन नित्यं,

मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

समीचीनबोधं समीचीनदृष्टिं,

समीचीनवृत्त समीचीन सौख्यम् ।

लवङ्गादिवृन्दैर्महारम्यरूपै,

र्मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

वृता येन कान्ता महामुक्तिनाम्नी,
महासौख्यदात्री महाशान्तिरूपा ।
जलाद्येन रम्येण रम्याभिधानं,
मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप् छन्दः ।

फाल्गुने कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां तिथौ तथा ।
किञ्चिन्निमित्तमासाद्य वैराग्या ध्यानतत्परः ॥ ११ ॥
लौकान्तिक महादेव कृतोद्बोधनसत्क्रियः ।
देवयानमधिष्ठाय प्राप्तारामो महाबुधः ॥ १२ ॥
पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य मूर्धजानखिलान् शुभान् ।
सिद्धेभ्यो नम इत्युक्त्वा दीक्षामङ्गीचकार यः ॥ १३ ॥
दीक्षाकाले महाज्ञानं चतुर्थं समवाय च ।
इत्थंचतुर्णिकायेनामरवृन्देन पूजितम् ॥ १४ ॥
वासुपूज्यजिनं चार्ये भक्त्योद्यापनसन्महे ।
नीरचन्दनशालेय शुभ नैवेद्यदीपकैः ॥ १५ ॥
धूपैः फलैश्च सृष्टेन महार्घेण महामुदा ।
कुर्यान्मे पापसंहारं वासुपूज्य जिनः सदा ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

नो नित्यं जगतीतले किमपि हा हा विद्यते कुत्रचित्,
सर्वं कालकरालकण्ठकलितं सर्वत्र संदृश्यते ।
इत्थं भोगशरीरशून्यहृदयो यः काननेऽप्यातपत्,
तं वन्दे वासुपूज्य राजतनयं भक्त्या सदाहं मुदा ॥१७॥

स्रग्विणीच्छन्दः ।

कारणं किञ्चिदासाद्य संसारतः,
संविरागं दधौ मुक्तिरामोत्सुकः ।
देव लौकान्तिका आगता भक्तितो,
भावनाद्वादशीं पेठुरानन्दतः ॥ १८ ॥
नास्ति किञ्चित्सदा शाश्वतं भूतले,
नास्ति रक्षा परा नश्यतो देहिनः ।
नास्ति किञ्चित्सुखं भूतले भाविनां,
बिन्दते ह्येक एवासुखं सन्ततम् ॥ १९ ॥
चेतनो भिन्न एवास्ति नो देहतो,
विद्यते देह एषोऽशुचिर्भङ्गुरः ।
मोहनिद्रावशाः कुर्वते ह्यास्रवं,
गुप्तितो जायते कर्मणां संवरः ॥ २० ॥
निर्जरा जायते सत्तपो धारणात्,
अत्र लोके सदा भ्रम्यते चेतनैः ।

दुर्लभो वर्तते बोधि लाभो महान्,

धर्म एवास्ति नो बन्धुराबन्धुः ॥ २१ ॥

देव लौकान्तिकाः स्वर्गलोकं गताः,

भावना द्वादशी मीरयित्वा सुखम् ।

भावनव्यन्तर ज्योतिष स्वर्गजा,

देवलोकास्तदा ह्यागता मोदतः ॥ २२ ॥

रत्नजातोञ्चितं याप्ययानं ततः,

देवता निर्ममे विक्रियाशक्तितः ।

श्री जिनस्तेन संयातवान्काननं,

तत्र केशान्निजान्पाटयित्वा क्षणम् ॥ २३ ॥

फाल्गुने मासके श्यामले पक्षके,

दर्शकोपान्तिकायां तिथौ मोदतः ।

ओन्नमः सिद्धमुच्चार्य दीक्षाश्रिता,

तत्क्षणं ज्ञानमासादितं तुर्यकम् ॥ २४ ॥

भूस्थितान्मूर्धजा निन्द्र आदत्तवान्,

धारयित्वा शुभान् रत्न सद्भाजने ।

मोदतः क्षिप्तवान् क्षीरपाथोनिधौ,

देवदेवीयुतो नाकमायातवान् ॥ २५ ॥

रिशो भूभुजो दीक्षिताः सत्वरं,

तेन सार्धं सदा मोक्षलक्ष्म्युत्सुकाः ।

तैर्युतः श्रीजिनो वासुपूज्यो बभौ,
कल्पवृक्षैर्युतो मेरुशैलो यथा ॥ २६ ॥

ध्यानयोगादयो सुन्दरक्ष्मापतेः,
सद्गृहे भोजनञ्चाद्य मादत्तवान् ।
देव वृन्दैस्ततो रत्नवृष्टि कृता,
तद्गृहे व्योमतः संपपाताङ्गणे ॥ २७ ॥

सत्तपोमङ्गलं लोकयित्वा सदा,
श्रीपतेः श्रीजनो धन्याभाग्योऽभवत् ।
पूजया साम्प्रतं भाग्यवन्तो वयं,
जातवन्तः स्वयं श्रीजिनक्ष्मापतेः ॥ २८ ॥

प्रमदाननच्छन्दः (हिन्दी गीतिका) ।

अथ मुक्ति सुप्रमदाननाब्ज षडङ्घ्रिमांहितशंभरं,
शुभकीर्तिसारसितीकृताखिललोकसुन्दरमन्दिरम् ।
दिविजाहि मर्त्य खगेन्द्र भूवरचित्त कंजविभाकरं,
वसुपूज्य राजतनूभवं प्रणमाम्यहं वदतांवरम् ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं तपःकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
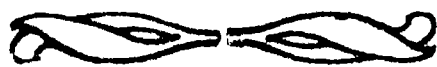
श्रीवासुपूज्य जिन ज्ञानकल्याणक पूजा।

हे कारुण्यमहोदधे गुणनिधे सत्प्रीतिपाथोनिधे,
सद्बोधा हिमरश्मिलोलितजगत्काष्ठावधे षड्विधे ।
पादाब्जानत देवमाल विलसत्सत्कीर्तिमाल प्रभो,
श्रीमन् हे वसुपूज्यजात जिनप प्रोद्धारयास्मानितः ॥१॥

संसाराख्यपयोनिधेस्तितरां दुःखाम्भसा सम्भृतात्,
नानायोनिसमुत्थजीवनिचयै र्यादोभिरन्तःप्लुतात् ।
मग्नोन्मग्नतया चिरेण नितरां संपीडिता भो विभो,
सीदामोऽत्र ततो विनम्र शिरसा कुर्मः पुनः प्रार्थनाम् ॥२॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर सम्वौषट् ।

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

रेवागङ्गादिसन्नीरैः काञ्चनामत्रसंस्थितैः ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाटीरैः कुङ्कुमोद्घृष्टैर्गन्धान्धीकृत षट्पदैः ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शालेयैस्तण्डुलै रम्यैरखण्डैः शशिसुन्दरैः ।
वासुपूज्य जिनं चार्ये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

चाम्पेय कुन्दजात्याद्यै र्लतान्तैर्मिलितालिभिः ।
वासुपूज्य जिनं चार्ये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आज्यसारेण चरुणा विविधेन सुगन्धिना ।
वासुपूज्य जिनं चार्ये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

घृतोद्भवेन दीपेन प्रकाशित दिशा सदा ।
वासुपूज्य जिनं चार्ये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

धूपेन दिव्यरूपेण गन्धसंतोषितालिना ।
वासुपूज्यजिनं चार्ये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

माकन्दनारिकेलाद्यैः सत्फलैः रसनाप्रियैः ।
वासुपूज्यजिनं चाये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

नीरपाटीर शालेय सुमाद्यैर्मिलितैर्मुदा ।
वासुपूज्यजिनं चाये ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ-पदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

माघे मासे सिते पक्षे द्वितीयायां तिथौ तथा ।
निहत्य घाति कर्माणि प्राप्तं येन चतुष्टयम् ॥ १२ ॥

ज्ञानदृग्वीर्यसौख्यानामनन्तानां महस्विनाम् ।
देवेन्द्राज्ञां समालभ्य धनदेन विनिर्मिते ॥ १३ ॥

द्वादशसभासंयुक्तो नृसुरासुरसेविते ।
स्थित्वा समवसरणे दत्तं येनोपदेशनम् ॥ १४ ॥

प्रातिहार्याष्टकोपेतं ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ।
वासुपूज्यं जिनं चाये पूर्णार्घेण महोत्सवे ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

यस्य ज्ञानदिवाकरेण दलितं ध्वान्तं ततं सर्वतो,
नो लेभे वसुधातले क्वचिदपि स्थानं भ्रमत्संततम् ।

लोकालोकपदार्थबोधनकरं सद्देशनातत्परं,
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं भक्त्या सदाहं मुदा ॥१६॥

अनुष्टुप् ।

माघमासे सिते पक्षे द्वितीयां सन्निधौ तथा ।
विशाखर्क्षे तपोऽरण्ये नीपानोकह सत्तले ॥ १७ ॥
ध्यानमग्नो जिनो भूत्वा तस्थौ निश्चलविग्रहः ।
नासाग्रां दृष्टिमाधाय क्रोडस्थापितपाणिकः ॥ १८ ॥
अर्धोन्मीलल्लसच्चक्षुः शनैरारब्धप्राणनः ।
आत्मानमात्मनाध्यायन् सुस्थिरीकृतमानसः ॥ १९ ॥
अभासीद् वासुपूज्योऽसौ सुरशैलनिभस्तदा ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानप्रतापतः ॥ २० ॥
मोहकर्मक्षयं कृत्वा क्षीणमोहोऽभवत्क्षणम् ।
हत्वा घातित्रयं पश्चादवाप्तज्ञानपञ्चमः ॥ २१ ॥
लोकालोकपदार्थज्ञो रश्मिमालीव भासितः ।
सयोगकेवलिप्रख्य स्त्रयोदशगुणस्थितः ॥ २२ ॥
चतुर्णिकायदेवेषु क्षोभोऽभूदासनक्षतेः ।
सौधर्मेन्द्रः समाहूय धनदं निदिदेशतम ॥ २३ ॥
वासुपूज्यजिनोऽद्याभूत्केवलज्ञानलोचनः ।
रचयाशु सभां तस्य सुन्दराकारशोभिनीम् ॥ २४ ॥
यक्षेश्वरः क्षितिं प्राप्य निर्ममे गगने सभाम् ।
विक्रियाशक्तितो दिव्यां विविधाकारभासिनीम् ॥ २५ ॥

क्वचित्सालः क्वचित्खातं क्वचिदाम्राद्यनोकहाः ।
क्वचित्पताका रम्याभाः क्वचिन्नर्तनशालिकाः ॥ २६ ॥
मानस्तम्भा विभासन्ते क्वचिदाकाशचुम्बिनः ।
रत्नराजिविनिर्माणाः पीठत्रयविभासिनः ॥ २७ ॥
मध्ये गन्धकुटीपद्मे जिनः श्रीवासुपूज्यकः ।
विद्यमानोऽभवद्विष्वग् सभा द्वादश भासिताः ॥ २८ ॥
जयजयध्वनि कुर्वन् निलिम्पानां समुच्चयः ।
व्योमयानान्यधिष्ठाय व्योममार्गात्समागतः ॥ २९ ॥
रत्नपल्लवविभ्राजी पादपोऽशोकसंज्ञितः ।
अभ्यर्णे जिननाथस्य शुशुभे वातवेपिनः ॥ ३० ॥
सिंहासनं महोत्तुङ्गं नानारत्नमनोहरम् ।
जिनाधिष्ठितमाभासीत्सूर्योदयगिरिर्यथा ॥ ३१ ॥
छत्रत्रयं बलक्षाभं रत्नराजिविभास्वरम् ।
शीर्षे भगवतोऽभासीच्चन्द्रत्रितय सन्निभम् ॥ ३२ ॥
भामण्डलं प्रभाभार पराभूत विभाकरम् ।
जिननाथ समीपेऽभाद् भव्यजन्तु विदर्पणम् ॥ ३३ ॥
सर्वाङ्गेभ्यो जिनेन्द्रस्य दुन्दुभिध्वानसन्निभः ।
निःमसार ध्वनी रम्यो लोकत्रयहितप्रदः ॥ ३४ ॥
मिलिन्द मिलिता विष्व मन्दारादि महीरुहाम् ।
वृष्टिर्बभूव पुष्पाणां निलिम्पपातिपातिता ॥ ३५ ॥
यक्षैराधूयमानानि चामराणि बभासिरे ।
जिनराज यशांसीव प्रसृतानि समन्ततः ॥ ३६ ॥

देवदुन्दुभि संनादो रोदसीं व्याप सुन्दरः ।
'एह्येहि भव्य' इत्येवं कुर्वाणः प्रेरणां नृणाम् ॥ ३७ ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेतोऽनन्तज्ञानादिभासितः ।
वासुपूज्यजिनश्चन्द्रे सप्ततत्त्वावभासनम् ॥ ३८ ॥
दिव्योपदेशनं भव्यजीव कल्याणकारकम् ।
श्रुत्वा सुरासुराः सर्वे तिर्यञ्चो मनुजास्तथा ॥ ३९ ॥
धर्मरूपं प्रविज्ञाय लेभिरे परमां मुदम् ।
शक्रसंप्रार्थनां श्रुत्वा विजहार जिनो भुवि ॥ ४० ॥
नभोमार्गेण पाथोजैर्देववृन्द विनिर्मितैः ।
सुगन्धिभिर्महारम्यैः पंक्तिरूपेण संस्थितैः ॥ ४१ ॥
ज्ञानकल्याणकं कृत्वा देवाः स्वर्गं प्रपेदिरे ।
मानवाः परमामोदं लेभिरे तस्य दर्शनात् ॥ ४२ ॥
दिव्यास्थानस्थितं देवं स्मारं स्मारं स्तुवन्ति ये ।
ते लभन्ते महापुण्यं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥ ४३ ॥

मालिनीच्छन्दः ।

जयति जनसुवन्द्यश्चिच्चमत्कारनन्द्यः,
शमसुखभरकन्दोऽपास्तकर्मारिवृन्दः ।
निखिलमुनिगरिष्ठः कीर्तिसत्तावरिष्ठः
सकलसुरपपूज्यः श्रीजिनोवासुपूज्यः ॥ ४४ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्वाणकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्य जिन पूजा ।

शुक्लध्यानकृपाणखण्डितरिपुः स्वाधीनतां प्राप्नुवन्
स्वच्छाकाशनिकाशचेतनगुणं चासाद्य यः स्वात्मना ।
लेभेऽनन्तमनश्वरं सुखवरं स्वात्मोद्भवं स्वात्मनि
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं भक्त्या मुदा सन्ततम् ॥ १ ॥

वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

हे वासुपूज्य जिनराज महामुनीन्द्र
मज्जन्तमत्र भववारिनिधौ दयालो ।
दत्त्वावलम्बनमतः कुरु मां विदूरं
मुक्त्वाऽनन्तमिह कं शरणं व्रजामि ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

पञ्चचामरच्छन्दः (हिन्दीनाराचच्छन्दः)

मुनीन्द्रचित्तशीतलेन सुन्दरेण चारुणा
सुवर्णकुम्भसंभृतेन निर्मलेन वारिणा ।

यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रसङ्घनन्दितं
जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुशीतलेन चन्दनेन भृङ्गसङ्घधारिणा
त्रिशालतापहारिणा मनःप्रसादकारिणा ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रसङ्घनन्दितं
जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शशिप्रभेण तण्डुलेन दिव्यगन्धधारिणा
अखण्डितेन मञ्जुलेन चित्ततोषकारिणा ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रसङ्घनन्दितं
जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा ।

मनोज्ञमालतीपयोजपारिजातपुञ्जकैः
स्वगन्धभारमोदितद्विरेफराजवृन्दकैः ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रसङ्घनन्दितं
जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुवर्णभाजनस्थितैरमन्दबोधकारकै-

निवेद्यकैर्घृताप्लुतैः सितासमूहधारकैः ।

यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रमङ्कनन्दितं

जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रभा चयप्रभासिभिर्दिनेन्द्रदीप्तिधारिभिः ।

सुदीपकव्रजे क्षणं समस्तमोहहारिभिः ॥

यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रमङ्कनन्दितं

जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुचन्द्रचूर्णपूरितः सुगन्धिभिः समन्वितैः

सुधूपवर्वशीकृतालिराजराजिराजितैः ।

यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रमङ्कनन्दितं

जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुमातुलिङ्गनारिकेल मोचकादि सत्फलैः

स्वगन्धतोषिताखिलैर्मनोहरैः सुनिर्मलैः ।

यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रमङ्कनन्दितं

जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुनीरचन्दनाक्षतैः प्रसूनदीपधूपनै–
निवेद्यसत्फलैर्महामनःप्रमोदरूपणैः ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दितं सुरेन्द्रसङ्घनन्दितं
जिनं यजामि द्वादशं जयावतीसुतं हितम् ॥११॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

भाद्रमासे सितेपक्षे पञ्चेन्द्रियक्यान्विते ।
चतुर्दश्यां तिथौ येन मन्दारार्द्रौ मनोहरे ॥ १२ ॥
हत्वा कर्म हठं प्राप्ता मोक्षलक्ष्मीरनश्वरी ।
चतुर्विधामरैर्यस्य पूजा निर्वाणकालजा ॥ १३ ॥
कृता भक्त्या समागत्य साटोपा सुकृतप्रदा ।
वासुपूज्यं जिनं चार्चे तमहं भक्तिसंयुतः ॥ १४ ॥
नीर पाटीर शालेय लतान्ताद्यैर्मनोहरैः ।
रोहिण्याख्यव्रतस्यास्मिन्नुद्यापनमहे मुदा ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां प्राप्त निर्वाणकल्याणकाय वासुपूज्याजिनाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

यः सज्ज्ञानविभूषितः सुरचया अर्चन्ति यं सन्ततं ।
ध्वस्तो येन मनोभवो बुधजनो यस्मै सदा तिष्ठते ॥
यस्मान्मोहपरम्परा विगलिता यस्यास्ति दासो जगत् ।
यस्मिल्लीनतमो विकल्पनिचयस्तं वासुपूज्यं भजे ॥१६॥

रोलाच्छन्दः (२४ मात्राः)

क्षुदावानलमेव तृषितजलनीर नमस्ते ।
कर्मारण्य कुठार कामकरिसिंह नमस्ते ॥
मोहतमोदिननाथ जगज्जननाथ नमस्ते ।
वासुपूज्यजिनदेव देवकृतसेव नमस्ते ॥१७॥

भाद्रापान्तदिने दग्धाखिलकर्ममहावन ।
प्राप्तानन्तचतुष्टयादिगुणपुञ्ज महाघन ॥
मुक्तिरमामुखकञ्जकञ्जिवनीपते सौख्यघन ।
वासुपूज्यजिनराज जयति दुरितौघ निकन्दन ॥१८॥

एकमास इहशिष्ट आयुषो यदा बभूव ।
कृत्वा योगनिरोधमत्र गतगतिर्बभूव ॥
मन्दारगिरौ ध्यानस्थिरमना बभूव ।
शुक्लध्यानप्रताप दग्धकर्मा च बभूव ॥१९॥

क्षणं मुक्तिवर रमणीरमणो जातो देवः ।
क्षणं भवानलतापवर्जितो जातो देवः ॥
क्षणं शुद्धचिद्रूपधारको जातो देवः ।
क्षणं विशुद्धाकाश संनिभो जातो देवः ॥२०॥

वासुपूज्यजिनवरो बन्धनादद्य विमुक्तः ।
श्रुत्वायातो देवचयो निजसङ्घसुयुक्तः ॥
नखकेशानादाय कृत्रिमं वपुश्चकार ।
अनलामरमुकुटादमरेशोऽनलंचकार ॥ २१ ॥

वासुपूज्य जिनदेह दाहममरेशः कृत्वा ।
भूतिकणैर्निजगात्रमत्र परिलिप्तं कृत्वा ॥

तस्य गुणावलि चिन्तनैकपटु चित्तं कृत्वा ।
स्वजनाम सह देवसमूहैर्लास्यं कृत्वा ॥ २२ ॥

चम्पापुर निकटस्थमचलमुत्कृष्टाकारं ।
पूजयन्ति सुरमर्त्यचया बुधमहिताकारम् ॥
मन्दारादृय रूयानमनोज्ञ पुण्याधारं ।
पूजयामि वयमत्र क्षर्गन्निर्मग्वरधारम् ॥ २३ ॥

हे वासुपूज्य जिनराज बन्धनान्मुक्तं कुरु माम् ।
समतासौख्यनिधानमत्रगुणलसितं कुरु माम् ॥
भुञ्ज दुःखावलीमत्र भवसिन्धौ पतितः ।
कर्ममहारिपुसैन्यशस्त्रनिचयेन विदलितः ॥ २४ ॥

दयासिन्धुर्गविहितो भवानमरव्रजनाथै-
लोकत्रयकल्याणकारको धृतसुरसार्थैः ॥
पक्षालालं तिरमभवानलमध्ये पतितं ।
निष्कामय जिननाथ कर्मरिपुचक्रविदलितम् । २५ ॥

मन्दाक्रान्ताछन्दः ।

कामज्वाला प्रशमनपटुः शैशवाद् ब्रह्मचारी ।
राज्यं प्राज्यं तृणमिव तरां यो मुमोचात्मतृप्तः ॥
स्मारं स्मारं मुनिरपि भवन् मुक्तिसंगामिनीं यः ।
सद्वृत्ताख्याभरणनिचये दत्तचित्तो बभूव ॥ २६ ॥

सोऽयं देवो बुधजनमनस्तोषकारी समन्तात्
संतापेऽस्मिन्पतितममरस्वामि वन्द्याङ्घ्रि युग्मः ॥
पक्षालालं दुरितनिलयं मुक्तिकान्तोत्सुकं मां
कुर्यात्तीर्णं भवजलधितो दुःखपङ्कस्युक्तात् ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं नि० ।

अडिल्लच्छन्दः ।

अविनाशी गुणवृन्द विभासी शिवपति-
मोहतिमिरततितरणिरमरपतिसंयुतः ।
भवदावानलदाहदमनरजनीकरो
वासुपूज्यजिनवरो जयति गुणसंयुतः ॥

(इसके बाद नीचे लिखा हुआ शान्तिमन्त्र बोलते हुए प्रतिमाजीके आगे थालीमें जलधारा छोड़ना चाहिये और अग्निमें धूप भी खेते रहना चाहिये ।)

शान्तिमन्त्रः ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । श्री वीतरागाय नमः । ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री पार्श्वतीर्थंकराय, द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यानपवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयंभुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने परमसुखाय, त्रैलोक्य महीव्याप्ताय, अनन्त संसारचक्रपरिमर्दनाय, अनन्तदर्शनाय, अनन्तवीर्याय, अनन्तसुखाय, त्रैलोक्यवशंकराय, सत्यज्ञानाय सत्यब्रह्मणे, धरणेन्द्र फणामण्डलमण्डिताय, ऋष्यार्थिकाश्रावकश्राविका प्रमुख चतुःसङ्घोपसर्गविनाशाय, घातिकर्मविनाशाय, अघातिकर्मविनाशाय। अपवादमस्माकं छिन्द२ भिन्द२ । मृत्युं छिन्द२ भिन्द२ । अतिकामं छिन्द२ भिन्द२ । रतिकामं छिन्द२ भिन्द२ । क्रोधं छिन्द२ भिद२ । अग्नि छिन्द२ भिन्द२ । सर्वशत्रु छिन्द२ भिन्द२ । सर्वोपसर्गं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वविघ्नं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वभयं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वराजभयं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वचोरभयं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वदुष्टभयं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमृगभय छिद२ भिद२ । सर्वपरमन्त्रं छिद२ भिद२ । सर्वमामयभय

छिंद२ भिंद२ । सर्वशूलभयं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वक्षयरोगं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वकुष्ठरोगं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वज्वर रोगं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वगजमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वाश्व-मारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वगोमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमहिषमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वधान्यमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्ववृक्षमारीं छिन्द२ भिन्द२ सर्वगुल्ममारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वपत्रमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वपुष्पमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वफलमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वराष्ट्रमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वदेशमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वविषमारीं छिन्द२ भिन्द२ । सर्वक्रूररोगं छिन्द२ भिन्द२ । सर्ववेतालशाकिनीभयं छिन्द२ भिन्द २ । सर्ववेदनीयं छिन्द २ भिन्द२ । सर्व मोहनीयं छिन्द२ भिन्द२ । ॐ सुदर्शन महाराज चक्रविक्रमतेजोबलं शौर्यशान्ति कुरु कुरु । सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु । सर्वभव्या नंदनं कुरु कुरु । सर्वगोकुलानंदनं कुरु कुरु । सर्वग्रामनगरखेट खर्वट मडम्ब पत्तन द्रोणामुख महानंदनं कुरु कुरु । सर्वलोका-नंदनं कुरु कुरु । सर्वदेशानंदनं कुरु कुरु । सर्वयजमानानंदनं कुरु कुरु । हन हन दह दह पच पच कुट कुट शीघ्रं व्याधि-व्यसनवर्जितं अभय क्षेमारोग्यं स्वस्त्यस्तु, शांतिरस्तु, शिव-मस्तु, कुलगोत्रधनं धान्यं सदाऽस्तु, चन्द्रप्रभ, वासुपूज्य, मल्लि, वर्धमान, पुष्पदंत, शीतल, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, परम देवाः सदा शांति कुर्वन्तु कुर्वन्तु इति स्वाहा । "उद्धृत"

(इस समय यजमानको चाहिये कि वह अपने व्रतोद्यापनके हर्षमें शक्ति अनुसार चार प्रकारका दान करे । इसके बाद पुष्पाञ्जलि क्षेपण करते हुए शान्तिपाठ बोले ।)

शान्तिपाठः ।

दोधकच्छन्दः ।

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम् ।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥ १ ॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च ।
शान्तिकरं गण शान्तिममीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टि दुन्दुभिरासन योजन घोषौ ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥
तं जगदर्चित शान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्ति मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः ।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ॥
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा
स्तीर्थंकराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ॥ ५ ॥

उपजातिच्छन्दः ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः ॥६

स्रग्धराच्छन्दः

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च मेघो विकिरतु सलिलं व्याधयो यान्तु नाशम ॥
दुर्भिक्षं चोरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप्—प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथादोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे
संपद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्याच्छन्दः ।

तवपादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥ १० ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दितु ॥ ११ ॥
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहोय ।
मम होउ जगदुबान्धव जिणवर तव चरणसरणेण ॥ १२ ॥

(इसके बाद कोई स्तुति बोलते हुए मण्डलकी तीन प्रदक्षिणाएं देवें)

विसर्जनपाठः ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्षरक्षजिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरादेवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
तेमयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥ ४ ॥

(इसके बाद ९ वार णमोकार मन्त्रका जाप करे फिर मन्दिरमें यदि अन्य वेदिकाएँ हों तो वहां अर्घ चढ़ावे ।)